पुष्प नं० ७, अ० भा० दि० जैन शास्त्रिपरिषद् की ओर से –

नियतिवाद

अपरनाम

क्रमबद्ध पर्याय

लेखक

सिद्धान्तवारिधि सिद्धान्तभूषण

श्री ब्र० पं० रतनचन्द्र जैन मुख्तार, सहारनपुर

[अध्यक्ष अ० भा० दि० जैन शास्त्रिपरिषद्]

प्रकाशक

बाबूलाल जैन जमादार साहित्यरत्न

संयुक्त मंत्री अ० भा० दि० जैन शास्त्रिपरिषद्

१२५८, हाथीखाना, बड़ौत (मेरठ) उ० प्र०

वीर निर्वाणोत्सव २४९२, सन् १९६६ ई०

प्रथम आवृत्ति १०००] [मूल्य १० पैसे

❀ विषय-सूची ❀





प्रस्तावना

जैन समाज के ख्यातनामा विद्वान सि० वारिधि रतनचंद जी मुख्तार के द्वारा लिखित 'नियतिवाद' अपर नाम 'क्रमबद्ध' पर्याय पुस्तक की भूमिका लिखते हुये मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होती है।

'नियतिवाद' के खण्डन में जैन शास्त्रों में पूर्वाचार्यों द्वारा बहुत कुछ लिखा गया है। भगवान महावीर कथित और गौतम गणधर प्रणीत द्वादशाङ्ग में १२वां अंग दृष्टिवाद है। यहां दृष्टि का अर्थ दर्शन और वाद का अर्थ आलोचना है। जिस अंग में अनेक मिथ्या दर्शनों की आलोचना की गई है वह दृष्टिवाद अंग है। यद्यपि अन्यान्य प्रमेयों का भी उसमें विवेचन है पर मुख्यतया इस अंग का नामकरण इन मिथ्यादर्शनों के खण्डन पर ही किया गया है। इन ही मिथ्यादर्शनों को जैन शास्त्रों में पाखण्ड नाम से पुकारा गया है और इन सब का वर्गीकरण ३६३ पाखण्डों में किया गया है। 'नियतिवाद' इन्हीं पाखण्डों में से एक है जिसका इस पुस्तक में निराकरण है।

नियतिवादियों का सिद्धान्त जैसा कि इस पुस्तक में वर्णित है 'जो जब जहां जैसा होना है वह उस समय वहां वैसा ही होगा' इस रूप में सर्वत्र उल्लिखित है। इस मत में भविष्य में होने वाले परिवर्तन और उनके कारण आदि सभी नियत हैं। उसमें कोई हेर फेर नहीं कर सकता। इस मत के प्रतिपादक

आचार्य कौन है इसका इतिहास में कोई उल्लेख नहीं मिलता श्वेताम्बर ग्रंथों में इतना अवश्य मिलता है कि भगवान महावीर की सर्वज्ञता को चुनौती देने के लिए गोशालक ने उनकी भविष्य वाणियों की अनेक स्थलों पर परीक्षा की और जब ठीक निकली तो वह नियतिवादी बन गया। लेकिन उक्त प्रसङ्ग जिस रूप से वर्णित है उस पर सहसा विश्वास नहीं होता। फिर भी यह तो संभव है कि भविष्य वाणियों की सचाई के आधार पर कोई भी नियतिवादी बन सकता है। हो सकता है कि उस समय गोशालक जैसे व्यक्ति भगवान महावीर की भविष्य वाणियों को विफल कर उनके प्रति जनता में अविश्वास उत्पन्न करना चाहते हों लेकिन स्वयं असफल होने पर नियतवादी बन गए हों। जो भी हो किन्तु यह निश्चित है कि उस समय एक नियतिवादी मान्यता के लोग थे और वे इसका प्रचार करते थे जिसका खण्डन गौतम गणधर को करना पड़ा।

इस मत की परम्परा आगे चली हो इसका कोई आभास नहीं मिलता यही कारण है कि जैन नैयायिकों ने जहां षट्दर्शनों की आलोचना की है वहाँ नियतिवाद की आलोचना का उन्हें कोई प्रसंग नहीं आया। जहां कहीं आलोचना मिलती है वह जैन न्याय ग्रन्थों में नहीं किन्तु धर्म शास्त्रों में मिलती है वह भी मिथ्यात्व गुणस्थान के वर्णन में अथवा दृष्टिवाद अंग का परिचय देते हुये। यदि इस मत की परम्परा चली होती तो जैन न्यायग्रंथों में इसका निराकरण अवश्य होता। आचार्य प्रभाचन्द्र ने स्त्रीमुक्ति और केवलाहार तक का निरसन किया है क्योंकि इस मत की परम्परा अब तक कायम है। इसलिए लगता है कि यह मत चला तो होगा पर गर्भपात की तरह बहुप्रचलित होने के पहले ही विनष्ट हो गया होगा।

भगवान महावीर के समकालीन गोशालक के इस मत को विलीन हुए आज उतने ही वर्ष हो गये हैं जितने भगवान महावीर के निर्वाण को लेकिन स्थानकवासी साधु सहजानी जो समयसार पढ़न के बाद अब दि कानजी स्वामी कहे जाने लगे हैं पुनः पन्द्रह बीस वर्ष से इस मत के प्रचार में संलग्न हैं। समयसार दिगम्बर जैनाचार्य कुन्दकुन्द की आध्यात्मिक रचना है उसे पढ़ने के बाद बेचारी आध्यात्मिकता तो सिमरती रह उसके बदले सुन्दर शय्या, मनोहर आसन, शुभ्र परिधान और उनका त्रिसंध्य वस्त्र प्रत्यावर्तन, मगलवर्द्धिनी कार, पीकदानी, सरस भोजन तथा स्वास्थ्यप्रद औषधोपचार का क्रम सतत चालू रहता है साथ ही आध्यात्मिक उपदेश भी रहता है। वे इस सब में परिवर्तन इसलिये नहीं कर सकते कि सर्वज्ञ ने ऐसा ही देखा था अतः जो कुछ हो रहा है यह सब पहले से ही नियत था। इसके अतिरिक्त समयसार में आपने निम्न रत्न और हस्तगत किये हैं। (१) निमित्त सर्वथा अकिंचित्कर है, उपादान से ही कार्य होता है (२) पुण्य विष्ठा है और उसे करने वाले अबोध बालक की तरह पदला रस चाटते हैं (३) महाव्रत आदि सब संसार के कारण हैं (४) कर्म पर द्रव्य होने से आत्मा के परिणाम को नहीं रोक सकता (५) शरीर के अंगोपांग का संचालन आत्मा नहीं करता स्वयं होता है (६) जीओ और जीने दो ऐसा कहने वाले अज्ञानी हैं। (७) पहले निश्चय सम्यक्त्व होता है फिर व्यवहार सम्यक्त्व होता है। व्यवहारनय है अवश्य इसलिये यह सत्यार्थ है अन्यथा तो असत्यार्थ ही है (८) निश्चय नय सर्वथा सत्यार्थ है (९) द्रव्य की जो पर्यायें होनेवाली हैं वे सब पहले से ही नियत हैं और वे ही क्रम से एक के बाद दूसरी होती रहती हैं (१०) अकाल मरण नाम की कोई चीज नहीं है, इत्यादि।

यद्यपि समयसार से इस प्रकार के अपसिद्धान्तों के निकालने का कोई आधार नहीं है पर यह सब समयसार के नाम पर ही कहा जाता है। अनेक विद्वानों ने इन सब का सप्रमाण निरसन किया है और आचार्य कुन्दकुन्द की रचनाओं से ही इन की असत्यता सिद्ध की है।

प्रस्तुत पुस्तक उनके नियतवाद के विरुद्ध एक सफल अभियान है और यह सिद्ध किया गया है कि नियतवाद का सिद्धान्त पाखण्ड (मिथ्यात्व) है। कुछ प्राकृतिक नियम हैं जो पहले से सिद्ध हैं लेकिन संसार के सभी परिवर्तन, द्रव्यों की अनन्त पर्यायें पहले से नियत है यह असंभव है।

सब कुछ नियत है इस सिद्धान्त के पोषण के लिये कहा जाता है कि सर्वज्ञ आगे होने वाली पर्यायों को पहले से ही जानता है यदि अनियत होती तो पहले से नहीं जानता।

(१) लेकिन प्रश्न यह है कि सर्वज्ञ के केवलज्ञान में उत्पन्न होने के प्रथम क्षण में ही संसार के सम्पूर्ण द्रव्य और आगे होनेवाली उनकी अनन्त पर्यायें सब एक साथ झलक जाती है। उस प्रथम क्षण में ही ऐसा कोई परिणमन अवशेष नहीं है जो सर्वज्ञ के ज्ञान में झलकने से रह गया हो ऐसी स्थिति में सर्वज्ञ के ज्ञान में एक बार ही झलकने वाली अनन्त पर्यायें सर्वज्ञ ज्ञान के अनुसार अब परिणमनहीन है अतः वे सब नित्य हो जायगी इसलिये सर्वज्ञ के ज्ञान के अनुसार कोई पदार्थ अनित्य नहीं रहेगा।

(२) एक ही पदार्थ में अनन्त विरोधी धर्म रहते है क्योंकि पदार्थ सत् असत् एक अनेक भेद अभेद नियत अनियत नित्य अनित्य रूप है। सर्वज्ञ के ज्ञान में ये परस्पर विरोधी धर्म झलकते है या नहीं? अथवा इनमें से कुछ विरोधी धर्म झलकते

है बाकी नहीं अथवा नियतत्व धर्म का प्रतिपक्षी कोई अनियत्व धर्म नहीं है।

(३) नास्तित्व धर्म के अभाव में अस्तित्व धर्म का प्रयोग नहीं हो सकता तब क्या अनियतत्व के अभाव में नियतत्व का प्रयोग बन सकता है ?

(४) विरोधी धर्म आपेक्षिक स्थिति से कहे जाते हैं यह अपेक्षा नयज्ञान के साथ है। सर्वज्ञ का ज्ञान प्रमाण ज्ञान है उसमें अपेक्षा के लिये कोई स्थान नहीं। ऐसी स्थिति में वे सर्वज्ञ किस प्रकार दो विरोधी धर्मों को जानते हैं ?

(५) सर्वज्ञ के ज्ञान में भूत और भविष्य किस रूप में हैं जब कि उनके अतीन्द्रिय ज्ञान में अतीत अनागत पर्याय वर्तमान में ही स्पष्ट हैं।

(६) 'सर्व पदार्थ नियत हैं' इस प्रतिज्ञा को सिद्ध करने के लिये हेतु प्रयोग कीजिये और बताइए कि वह हेतु व्याप्य, कार्य, कारण पूर्वचर, उत्तरचर, सहचर हेतुओं में से कौनसा है (आप न्याय शास्त्र को न समझने वाले इसका उत्तर देने का कष्ट न करें)।

(७) आचार्य कुन्दकुन्द ने लिखा है कि 'सर्वज्ञ व्यवहार से सब को जानता देखता है और निश्चय से अपनी आत्मा को ही जानता देखता है। इन दोनों बातों में कौनसा औपचारिक कथन है। और कौनसा वास्तविक है और यह कहने की कुन्दकुन्द को क्या आवश्यकता हुई।

(८) तत्वार्थ सूत्र में अनपवर्त्य आयुष्य और अपवर्त्य आयु वाले जीवों का कथन है उनमें कौन सा वास्तविक है।

(९) प्रश्न नं० ८ में जो औपचारिक कथन हो और प्रश्न नं० ७, में जो औपचारिक कथन हो क्या उनकी व्याख्या में कोई अन्तर

है। ये कुछ प्रश्न हैं जिनका समाधान नियतिवादियों को करना चाहिये। आज तक जो कुछ नियतिवाद के समर्थन में कहा गया है वह या तो सर्वज्ञ ज्ञान की दुहाई है या स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा की 'ज जस्स जम्मि गाथा है जिनका पुष्ट प्रमाणों एवं तर्कों के साथ इस पुस्तक में खण्डन किया गया है।

कुछ दिन पहले नियतिवादी पंडितों ने शास्त्रों में वर्णित नियतिवाद पाखण्ड को कार्य कारण भाव से रहित होने के कारण पाखण्ड बतलाया था और सोनगढ़ के प्रचारित नियतिवाद को कार्य कारण भाव सहित होने से सम्यक् बताया था इस रटन के उत्तर में मैंने लिखा था कि जिस पाखण्ड में कार्य कारण भाव को गुंजायश नहीं है वह स्वभाववाद नाम का पाखण्ड है और उसका भी जैनाचार्यों ने खण्डन किया है। नियतिवाद पाखण्ड ने तो कार्य कारण भाव को स्वीकार किया है क्योंकि उसके वर्णन में 'जेण विहाणेण' आदि पदों का प्रयोग किया है जिसका अभिप्राय कारण से ही है। तब से अब यह रटन छोड़ दी गई है कि नियतिवाद पाखण्ड में कार्य कारण भाव नहीं है।

इसके अतिरिक्त अब भी कुछ लोग ऐसे हैं जो यह कहते हैं कि शास्त्रों में वर्णित नियतिवाद पाखण्ड तो मिथ्यादृष्टि का नियतिवाद है और सोनगढ़ का कपोल कल्पित नियतिवाद सम्यग्दृष्टि का नियतिवाद है। इस विभाजन रेखा को पढ़कर कोई भी समझदार हंसे बिना नहीं रहेगा। पहले तो इस विभाजन रेखा का कोई आधार ही नहीं है। केवल 'मुखमस्तीति वक्तव्यम्' का ही इसमें सहारा है। दूसरे नियतिवाद पाखण्ड ही क्यों अन्य ३६३ पाखण्डों के बारे में भी यह कहा जा सकता है कि वे सब मिथ्यादृष्टियों से सम्बन्ध रखते हैं और अगर सोनगढ़ के

द्वारा यदि व प्रसारित किये जाते हैं तो इनका समन्वय सम्य ग्दृष्टियों में हो जायगा। इस सूक्ष्म चूक के लिये क्या कहा जाय। आज काल मात्र ऐसे ही निष्प्राण तर्कों के आधार पर कल्पना प्रसूत सिद्धान्तों का समर्थन किया जा रहा है। लेकिन प्र. रतनचन्द जी जैसे समर्थ विद्वानों के अथक प्रयत्न से इन सबका पूर्ण खण्डन किया गया है।

इस पुस्तक में नियतिवाद के विरुद्ध युक्तियां तो हैं ही लेकिन प्रचुर मात्रा में आगम प्रमाणों का भी संग्रह किया गया है। पुस्तक अपने आप में स्वयं आगम बन गई है। प्र. रतन चन्दजी में यह विशेषता है कि वे युक्ति के साथ तुरन्त आगम प्रमाण उपस्थित करते हैं और उन प्रमाणों के आजू बाजू जो भी शंका समाधान होता है उसे भी अविकल दे देते हैं साथ ही अपनी सरल भाषा से उसे और भी स्पष्ट कर देते हैं इस पुस्तक में एक सब से सुन्दर प्रमाण जयधवला का बड़ा ही हृदयग्राही है। हृदयग्राही इसलिये कि वह हम नवीन ही जान पड़ा। धवला कार ने अतीत अनागत पर्यायों को अर्थ संज्ञा नहीं दी और जो अर्थ नहीं है उसे सर्वज्ञ भी व्यक्त रूप में नहीं जानता केवल शक्ति रूप में उन्हें जानता है। वर्तमान पर्याय को ही अर्थ संज्ञा है अतः वह तो सर्वज्ञ ज्ञान में व्यक्त है शेष पर्यायें जो पदार्थ में शक्ति रूप से है शक्ति रूप में ही सर्वज्ञ को ज्ञात है।

मुख्तार सा. ने अकालमरण के संबंध में भी बहुत सुन्दर स्पष्टी-करण दिया है। आचार्य विद्यानन्द का शंका समाधान जिसमें अकाल मरण को सिद्ध किया गया है बड़ा ही प्रबल, यौक्तिक और अत्यंत समाधान पूर्ण है। कुछ लोग न्याय शास्त्र में पदार्थ सिद्धि को कहते हैं कि उसका संबंध अध्यात्म ग्रन्थों में वर्णित प्रमेय की ओर नहीं ले जाना चाहिए। उनके मत में मानों अध्यात्म शास्त्र

एक मन का बहलाव मात्र है और यह इतना नाजुक है कि तर्क के प्रहार को सह नहीं सकता। वे यह भूल जाते हैं कि चारों अनुयोगों में जो कथन हो उसी को स्याद्वाद की शैली पर खरा उतारने के लिये जैनाचार्यों ने न्याय शास्त्र का प्रणयन किया है। यदि न्याय शास्त्र की सरणि से अध्यात्म बाहर होता तो आज समयसार या तो वेदान्त होता अथवा सांख्यशास्त्र या मात्र कपोल कल्पना बनकर रह जाता। स्वय आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने समयसार के प्रमेय को तर्क और स्याद्वाद की परिधि में ही प्रस्तुत किया है। इसीलिये तो उन्होंने 'सांख्यमत का प्रसङ्ग आ जायगा' 'विष्णुमत कथन सिद्ध हो जायगा' कोई करे कोई भोगे इत्यादि बुद्धमत की बात माननी होगी ये कथन कुन्दकुन्द के तार्किक दृष्टिकोण को ही सिद्ध करते हैं। अध्यात्म के अंदर अपनी स्याद्वाद शैली को जीवित रखने के लिये ही उन्होंने एक ही प्रकरण को निश्चय नय और व्यवहारनय प्रदर्शित किया है। अतः अध्यात्म को न्याय की शैली से असंबद्ध बतलाना लोगों को आदम युग में ले जाना है जहां असंभव बातें भी श्रद्धा के नाम पर मान्य कर ली जाती थीं।

श्री सिद्धांतवारिधि सिद्धांतभूषण प्र० रतन चंदजी मुख्तार ने इस पुस्तक की रचना में जो श्रम किया है उसकी सराहना की जानी चाहिए। भा० व० दि० जैन शास्त्रिपरिषद् ने इस पुस्तक का प्रकाशन कर अपने सेवा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। मैं मुख्तार साहब और शास्त्रिपरिषद् दोनों ही का अभिनन्दन करता हूँ। समाज को आशा है कि पूज्य मुख्तार सा० इसी प्रकार के रत्न समाज को अर्पित करते रहेंगे।

विनीत,

लाल बहादुर शास्त्री M A, PH D

नियतिवाद

अपरनाम

क्रमबद्ध पर्याय

प्रश्न नं १ – 'नियतिवाद' और 'क्रमबद्ध पर्याय' इन दोनों में क्या अन्तर है ?

उत्तर न १ – 'नियतिवाद' और 'क्रमबद्ध पर्याय' इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक समय की पर्याय नियत है। इस नियत पर्याय का स्थान और कारण भी नियत हैं। वह नियत पर्याय किस प्रकार की होगी यह सब सर्वथा नियत है इस में कोई हेर फेर नहीं कर सकता। क्रमबद्ध पर्याय का यही अर्थ है कि नियत पर्यायों के कालक्रम, स्थानक्रम आदि सब एक सूत्र में सर्वथा बद्ध हैं उस में कोई हेर फेर नहीं कर सकता। इस प्रकार 'नियतिवाद' और 'क्रमबद्ध पर्याय' में कोई अन्तर नहीं है।

नियतिवाद के स्वरूप का विचार

प्रश्न न २ – 'नियतिवाद' शब्द का प्रयोग किन किन आर्ष ग्रन्थों में हुआ है और 'क्रमबद्ध पर्याय' शब्द का प्रयोग किस किस आचार्य ने किया है ?

उत्तर न. २ – श्री १००८ जिनेन्द्र भगवान की दिव्यध्वनि अनुसार श्री १०८ गौतम गणधर ने द्वादशांग रूप जिन श्रुत की रचना की जिस में बारहवें दृष्टिवाद अंग के पाँच भेदों में से 'सूत्र' में तीनसो त्रेसठ मिथ्या मतों का वर्णन है। इन ३६३ मिथ्यामतों में से 'नियतिवाद' भी एक मिथ्या मत है जिसका कथन 'सूत्र' के तीसरे अधिकार में है। उस 'नियतिवाद' का स्वरूप निम्न प्रकार है –

जत्तु जदा जेण जहा जस्स य णियमेण होदि तत्तु तदा।
तेण तहा तस्स हवे, इदि वादो णियदिवादो दु॥८८२॥ (गो क.)

अर्थ – जो जिस समय जहा जिससे जैसे जिस के नियम से होता है, वह उस समय वहा उस से वैसे ही उस के होता ही है। ऐसा सर्वथा सब वस्तु में मानना नियतिवाद एकान्त मिथ्यात्व है।

"यद्भवति तद् भवति, यथा भवति तथा भवति, येन भवति तेन भवति, यदा भवति तदा भवति, यस्य भवति तस्य भवति, इति नियतिवाद।" (पं स पृ ५७० ज्ञानपीठ)

अर्थ – जो होना है वही होता है, जैसा होना है वैसा ही होता है, जिस के द्वारा होना है उस ही के द्वारा होता है, जिस समय होना है उसी समय होता है। जिस का होना है उस ही का होना है यह नियतिवाद है जो एकान्त मिथ्यात्व है।

यदा यदा यत्र यताऽस्ति येन यत्, तदा तथा तत्र ततोऽस्ति तेन तत्। स्फुट नियत्येह नियम्यमाण, परो न शक्त किमपीह कर्तुम ॥३१०॥ (अ प सं)

अर्थ – जिस का जहा जब जिस प्रकार जिस से जिस के द्वारा जो होना है तब तहा तिस का तिस प्रकार उस से उस के

द्वारा वह होना नियत है, अन्य कुछ भी फेर फार नहीं कर सकता। ऐसा सर्वथा मानना एकान्त मिथ्यात्व है।

इस प्रकार श्री १०८ गौतमगणधर ने और उन के पश्चात् अन्य आचार्यों ने एकान्त मिथ्यात्व का कथन करते हुए 'नियतिवाद' का उपरोक्त लक्षण बतलाया है किन्तु 'क्रमबद्ध पर्याय' शब्द का प्रयोग किसी भी आचार्य ने नहीं किया है।

प्रश्न नं ३—जब 'नियतिवाद' सिद्धान्त और क्रमबद्ध पर्याय' सिद्धान्त में कोई अन्तर नहीं है 'क्रमबद्ध पर्याय' शब्द का प्रयोग किसी आचार्य ने नहीं किया तो 'नियतिवाद' के स्थान पर 'क्रमबद्ध पर्याय' शब्द का प्रयोग क्यों किया जाता है?

उत्तर नं ३—'नियतिवाद' सिद्धान्त को श्री १०८ गौतम गणधर ने एकान्त मिथ्यात्व कहा है ऐसा आर्ष ग्रन्थों में स्पष्ट उल्लेख है। यदि 'नियतिवाद' सिद्धान्त का नियतिवाद' के नाम में ही प्रचार किया जाता तो भोला समाज इसको स्वीकार न करती। 'नियतिवाद' के स्थान पर 'क्रमबद्ध पर्याय' नामान्तर इसलिये किया गया है कि भोली जनता में उस 'नियतिवाद' एकान्त मिथ्यात्व का 'क्रमबद्ध पर्याय' के नाम से प्रचार हो सके।

प्रश्न नं ४—"जो जो देखी वीतरागी ने, सो सो होसी वीरा रे।" इन वाक्यों के द्वारा तो नियतिवाद (क्रमबद्ध पर्याय) का उपदेश किया गया है फिर नियतिवाद को एकान्त मिथ्यात्व क्यों कहा जाता है।

उत्तर नं ४—इन वाक्यों से भी एकान्त नियतिवाद का उपदेश नहीं दिया गया है। इस पूर्ण पद्य पर यदि विचार किया जाय तो बात स्पष्ट हो जाती है।

जो-जो देखी वीतरागी ने, सो सो होसी वीरा रे।
अन होनी ... कुवत, काहे होत अधीरा रे॥ १

इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस में तो कष्ट के समय अधीर न होने के लिये इस प्रकार का विचार करने के लिये उपदेश दिया गया है। इसीलिये इसी पद्य के अंत में निम्न प्रकार लिखा गया है।

निश्चय ध्यान धरहु वा प्रभु को, जो टारे भव पीरा रे।
भैया चेत धरम निज अपनो, जो तारे भव पीरा रे॥

इस पद्य के द्वारा यह उपदेश दिया गया है कि चेतना रूपी धर्म को सभाल कर श्री जिनेन्द्र भगवान का ध्यान कर जिससे भव भ्रमण रूपी दुःख मिटकर संसार समुद्र से पार हो जायगा। मोक्ष जाने का काल नियत नहीं है जिसकी तुझे को इन्तजार करनी पड़े किन्तु मोक्ष तेरे पुरुषार्थ पर निर्भर है। जब तू अपनी चेतना को सभाल कर प्रभु का ध्यान कर लेगा तू संसार समुद्र से पार हो जायेगा।

पूर्ण प्रकरण को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'जो जो देखी वीतराग ने' इत्यादि छन्द के द्वारा एकान्त नियतिवाद का उपदेश नहीं दिया गया किन्तु मोक्ष पुरुषार्थ के उपदेश द्वारा मोक्ष पर्याय का काल अनियत सिद्ध किया गया है।

प्रश्न नं ४—मोक्षमार्ग प्रकाशक में तो काललब्धि व भवितव्यता को मोक्ष का कारण कहा है। जिससे सिद्ध है कि प्रत्येक पर्याय अपने नियत स्वकाल पर ही होगी आगे पीछे नहीं हो सकती ?

उत्तर नं ४—मोक्ष मार्ग प्रकाशक का यदि पूर्ण प्रकरण देखा जाय तो मोक्ष पर्याय के लिये काललब्धि व भवितव्यता का निषेध ही है। उस में तो निम्न प्रकार लिखा है।

पूर्वोक्त तीन कारण कहे तिन विषै काल लब्धि वा होनहार तो किछु वस्तु नाहीं। जिस काल विषै कार्य बने सोइ काललब्धि

'और जो कार्य भया सोई होनहार। बहुरि जो कर्म का उपशमादिक है सो पुद्गल की शक्ति है। ताका आत्मा कर्ता हर्ता नहीं। बहुरि पुरुषार्थ से उद्यम करिए है सो यह आत्मा का कार्य है। तातें आत्मा को पुरुषार्थ करि उद्यम करने का उपदेश दीजिए है।"

इस से स्पष्ट हो जाता है कि मोक्षमार्ग प्रकाशक में भी काललब्धि, होनहार या नियत स्वकाल स्वीकार नहीं किया गया है किन्तु मोक्षपर्याय के काल को अनियत मानकर पुरुषार्थ के द्वारा मोक्ष पर्याय की प्राप्ति का उपदेश दिया गया है। जब मोक्ष पर्याय का काल नियत नहीं है तो आगे पीछे होने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। 'काल लब्धि' व 'होनहार' न द्रव्य है, न गुण है, न पर्याय है और न आपेक्षिक धर्म है इसीलिए मोक्षमार्ग प्रकाशक में कहा गया 'काललब्धि या होनहार तो किछु वस्तु नाहीं"

प्रथमानुयोग और क्रमबद्ध पर्याय

प्रश्न नं ६—पंचमकाल के अन्त में होने वाले मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका के नाम आदि का कथन पाया जाता है और आगामी चौबीस तीर्थंकर के नाम भी पाये जाते हैं। तथा मारीच का जीव अन्तिम तीर्थंकर होगा। इत्यादि कथन प्रथमानुयोग में पाये जाते हैं। जिनसे क्रमबद्ध पर्याय सिद्ध होती है

उत्तर नं ६—यदि कुछ पर्यायों का काल नियत हो तो इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि सब द्रव्यों की सर्व पर्यायों का काल नियत है। क्योंकि नियत पर्यायों की अन्य पर्यायों के साथ व्याप्तिरूप का संबंध नहीं है। जैसे धूम के सद्भाव

अग्नि का सद्भाव अवश्य होता है और अग्नि के अभाव में धूम का भी अभाव होता है, ऐसा नियत पर्याय और अन्य पर्यायों में सम्बन्ध नहीं है। किन्तु जैसे एक स्त्री के छह पुत्र उत्पन्न हुए व छहों काले थे उन छह पुत्रों को काला देखकर यह कहना कि सातवां पुत्र जो गर्भ में है वह भी काला होगा यह ठीक नहीं है क्योंकि उन छहों पुत्रों के वर्ण का गर्भस्थ सातवें पुत्र के वर्ण से अविनाभाव सम्बन्ध नहीं है। इसलिये यह तर्काभास है। इसी प्रकार किसी द्रव्य की दो चार अशुद्ध पर्यायों के काल की नियति को देखकर शेष अशुद्ध पर्यायों को भी नियति कहना तर्काभास है अर्थात ठीक नहीं है।

जिस द्रव्य की जो पर्याय नियत होती है उस ही का कथन करना सम्भव है किन्तु जो पर्यायें अनियत हैं उन का कथन सम्भव नहीं है। जैसे अन्तिम इक्कीसवें कल्की राजा का और उस के समय में होनेवाले मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका का तो उल्लेख है किन्तु उस से पूर्व में होनेवाले कल्की राजाओं तथा उनके समय में होनेवाले मुनि आर्यिका, श्रावक, श्राविका के नाम आदि का भी उल्लेख नहीं है, इस का कारण यह है कि उनकी पर्याय अनियत हैं। इस हुण्डा-अवसर्पिणी काल के पश्चात् जो प्रथम हुण्डा अवसर्पिणी काल होगा उसमें प्रथम तीर्थंकर कौन होगा यह अनियत है अन्यथा उसका कथन होता।

यदि कोई श्री हनुमान जी का उदाहरण लेकर अपने बच्चे को पर्वत पर गिरा देवे तो उस को अपने बच्चे से हाथ धोना पड़ेगा, इसी प्रकार यदि कोई कुछ नियत पर्यायों का उदाहरण लेकर मोक्षपर्याय के लिये उस नियत समय की इंतजार करने लगे तो उसका अकल्याण ही होगा।

प्रथमानुयोग म धर्मे मा अनकों उदाहरण हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि पर्याय अनियत भी है। जैसे [१] स्वरीमार भील काग का मास खायगा या नहीं और यह मरकर कहां उत्पन्न होगा यह सब अनियत था, क्योंकि अवधि ज्ञान के द्वारा भी यह नियत रुप से नहीं जाना जा सका। [२] श्री धर्म रुचि मुनिराज मरकर मानने नरक जायेंगे या नहीं यह अनियत था, क्योंकि चार ज्ञान के धारी श्री गौतम गणधर ने निम्न प्रकार उत्तर दिया था

अत परं मुहूर्तं चन्देवमेव स्थितिं भजेत्।
आयुषो नारकस्यापि प्रायोग्योऽय भविष्यति

यदि अब अन्तर्मुहूर्त तक उन की ऐसी ही स्थिति रही तो वे नरक आयु का बंध करने योग्य हो जावेंगे।

जहा पर पर्याय अनियत होती है वही पर 'यदि' आदि शब्दों का प्रयोग होता है। इस प्रकार प्रथमानुयोग के आधार पर भी यह सिद्ध होता है कि कुछ पर्यायें नियत हैं और कुछ पर्याय अनियत हैं।

श्री १०८ कुल भद्र आचार्य ने सार समुच्चय ग्रन्थ में कहा है–

आयुर्यस्यापि देवज्ञैः परिज्ञाते दिनान्तके।
तस्यापि क्षीयते सद्यो निमित्तान्तरयोगत ॥६॥

१ उपलम्भानुपलम्भनिमित्त व्याप्तिज्ञानमूह इदमस्मिन्सत्येव भवत्यसति न भवत्येवेति च ॥यदाग्नावेव धूमस्तदभावे न भवत्येवेति च॥ असम्बद्धे ज्ञानं तर्काभासं यावांस्तत्पुत्र स श्याम इति यथा॥ [परीक्षामुख]।

अर्थ जिस किसी की भी आयु, भाग्य के ज्ञाता ज्ञानि द्वारा हित से [अमुक समय में] अन्त होगी ऐसा जान लिय जाये उसकी भी आयु किसी विपरीत निमित्त व संयोग हो पर शीघ्र क्षय हो जाता है। [श्री ब्र शीतलप्रसाद कृत अर्थ]।



२

स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा ३२१, ३२२ व ३२३ पर विचार

प्रश्न नं० ७—श्री स्वामी कार्तिकेय अनुप्रेक्षा में तो ३२१, व ३२२ गाथाओं द्वारा नियतिवाद सिद्धान्त को सिद्ध किया है और गाथा ३२३ में यह भी कहा है कि जो एकान्त नियतिवाद को नहीं मानता वह मिथ्यादृष्टि है फिर सर्वथा नियतिवाद के मानने वाले को मिथ्यादृष्टि क्या कहते हो ?

उत्तर नं० ७—स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा ३२१ व ३२२ में एकान्त नियतिवाद का उपदेश नहीं दिया गया है किन्तु कुदेव की पूजा के निषेध के लिये सम्यग्दृष्टि क्या विचार करता है उन विचारों का कथन है और गाथा ३२३ में तो यह कहा गया है कि जो जिनागम अनुसार छहों द्रव्य और उनकी पर्यायों का श्रद्धान करता है वह सम्यग्दृष्टि है और जिनागम अनुसार श्रद्धान नहीं करता वह मिथ्यादृष्टि है। स्वामिकार्तिकेय अनुप्रेक्षा में उस स्थल पर एकान्त नियतिवाद सिद्धान्त के कथन करने का कोई प्रकरण ही नहीं था। इसका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—

गाथा ३२१, ३२२ व ३२३ धर्मानुप्रेक्षा में हैं। धर्मानुप्रेक्षा गाथा ३०४ में मुनि धर्म और गृहस्थ धर्म के भेद से दो प्रकार का धर्म बतलाया है। गाथा ३०५ व ३०६ में गृहस्थ धर्म के बारह भेदों का कथन है। जिसमें सर्व प्रथम भेद 'सम्यग्दर्शन' का है। गाथा ३०७ से ३२८ तक सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति आदि का कथन

है और गाथा ३२५, ३२६ व ३२७ मे सम्यग्दर्शन के महात्म्य का कथन है उसके पश्चात् ग्यारह प्रतिमा के स्वरूप का कथन है।

गाथा ३०७ में सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति की योग्यता का कथन है। गाथा ३०८ से ३११ तक सम्यक्त्व के उपशमादि तीन भेदों का कथन है। गाथा ३११ व ३१२ मे सम्यग्दृष्टि का लक्षण बतलाते हुए यह कहा है कि जो अनेकान्तात्मक तत्वो का तथा जीवाजीवादि पदार्थों का श्रुत ज्ञान और नयो के द्वारा श्रद्धान करता है वह सम्यग्दृष्टि है। गाथा ३१३ व ३१४ में यह बतलाया कि सम्यग्दृष्टि के आठ मद नहीं होते और विषयों को हेय समझता है। गाथा ३१५ व ३१६ मे बतलाया कि सम्यग्दृष्टि की साधु के प्रति विनय होती है और साधर्मियों मे अनुराग होता है तथा शरीर और जीव को भिन्न जानता है। गाथा ३१६ मे यह कहा है जो दोष रहित देव को, दयामयी धर्म को और निर्ग्रंथ गुरु को मानता है वह वास्तव मे सम्यग्दृष्टि है। गाथा न १८ मे यह कहा कि जो दो दोष सहित देव को, जीव हिंसा मे धर्म और परिग्रह सहित गुरु को मानता है वह निश्चय से मिथ्यादृष्टि है अत कुदेव की पूजा के निषेध के लिये सम्यग्दृष्टि क्या विचार करता है उन विचारो का कथन गाथा ३१९ से ३२२ तक इन चार गाथाओ मे किया गया है। इन चार गाथाओं मे किसी सिद्धान्त का कथन नहीं है।

ये गाथा इस प्रकार हैं—

ण य को वि देदि लच्छी ण को वि जीवस्स कुणदि उवयारं ।
उवयारं अवयारं कम्मं पि सुहासुहं कुणदि ॥ ३१९ ॥
भत्ताए पुज्जमाणो विंतरदेवो वि देदि जदि लच्छी ।
तो किं धम्मे कीरदि एवं चिंतेइ सद्दिट्ठी ॥ ३२० ॥
जं जस्स जम्मि देसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि ।
णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अहव मरणं वा ॥ ३२१ ॥
तं तस्स तम्मि देसे तेण विहाणेण तम्मि कालम्मि ।
को सक्कदि वारेदुं इंदो वा तह जिणिंदो वा ॥ ३२२ ॥

अर्थात् — गाथा ३२० में 'एवं चिंतेइ सद्दिट्ठी' सम्यग्दृष्टि इस प्रकार विचार करता है, यह शब्द 'मध्यम दीपक न्याय' से गाथा ३१९ व ३२१ व ३२२ से भी सम्बन्ध रखते हैं। सम्यग्दृष्टि विचार करता है कि न तो कोई जीव को लक्ष्मी देता है और न कोई उपकार करता है। उपकार या अपकार तो जीव का शुभ या अशुभ कर्म करता है। नोट यह मात्र सम्यग्दृष्टि के विचार हैं, सिद्धान्त नहीं हैं, क्योंकि श्री १०८ उमास्वामी ने तत्वार्थ सूत्र में "परस्परोपग्रहो जीवानाम् (५।२१)" और श्री १०८ अमृतचन्द्र सूरि ने तत्वार्थसार में 'परस्परस्य जीवानामुपकारो निगद्यते।' इन शब्दों द्वारा यह सिद्धान्त स्पष्ट रूप से कहा है कि एक जीव दूसरे जीव का उपकार या अपकार कर सकता है। कमठ के जीव ने श्री १००८ पार्श्वनाथ के जीव का अनेकों भवों में अपकार किया है। इस प्रकार गाथा ३१९ में किसी सिद्धान्त का कथन नहीं है।

गाथा ३२० — सम्यग्दृष्टि ऐसे विचार है जो व्यन्तर देव ही भक्ति करि पूज्या हुवा लक्ष्मी दे है। तो धर्म को काहे कीजिये॥ कुदेव की पूजा के निषेध के लिये यद्यपि यह विचार करे है कि

व्यंतर देव लक्ष्मी आदि नहीं दे सकता तथापि सेठ सुदर्शन, सुलोचना, अंजना आदि का कष्ट व्यंतर देवों ने दूर किया पर गुफा में श्री हनुमान का जन्म हुआ था उस समय व्यंतर ने ही सिंह से अंजना की रक्षा की थी। श्री १०८ कुन्दकुन्द आचार्य को श्री १००८ सीमंधर तीर्थंकर के समवशरण में देव ही ले गये थे।

इस गाथा ३२० में यह भी कहा गया है कि धर्म पुरुषार्थ के द्वारा लक्ष्मी की प्राप्ति हो सकती है लक्ष्मी आने का कोई नियत काल नहीं है। जिस समय जीव धर्म पुरुषार्थ करेगा उस के द्वारा उस को लक्ष्मी प्राप्त हो जायगी। लक्ष्मी आने का कोई काल व्यवस्थित नहीं है।

गाथा ३२१ व ३२२ में कुदेव पूजा के लिये सम्यग्दृष्टि विचार करे है कि व्यंतर आदि देवों की तो बात ही क्या इन्द्र व जिनेन्द्र जैसे भी किसी जीव के जन्म मरण या सुख दुख को टालने में समर्थ नहीं है क्योंकि जिस जीव के जिस क्षेत्र में जिस काल में जिस विधान करि जन्म मरण या सुख दुख सर्वज्ञ देव ने जाण्या है सो ही तिस प्राणी के तिस ही क्षेत्र में तिस ही काल में तिस ही विधान करि नियम [redacted] होय है।

इन दो गाथाओं में श्री १०८ स्वामी कार्तिकेय ने एकान्त नियतिवाद का सिद्धान्त नहीं कहा था क्योंकि श्री स्वामी कार्तिकेय यह जानते थे कि सर्वज्ञ देव ने (जिसका जहाँ जब जिस प्रकार जिससे जिसके द्वारा जो होना है, तब वहां तिस का तिस प्रकार उससे उसके द्वारा वह अवश्य होता है। पर महानाचार्य सर्वज्ञवाणी के विरुद्ध कैसे उपदेश दे सकते थे। जो गाथा ३२१ व ३२२ स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा से एकान्त

नियतिवाद सिध्दान्त को सि* करना चाहते हैं व श्री १०८ स्वामिकार्तिकेय महानाचार्य पर जिन द्रोही का दोष आरोपित करना चाहते हैं।

गाथा ३१६, ३२०, ३२२ व ३२२ म गाथा ३२३ का सम्बन्ध नहीं है क्योंकि गाथा ३१६, ३२, ३२१ व ३२२ म सम्यग्दृष्टि के विचारों का कथन है और गाथा ३२३ म सम्यग्दृष्टि के लक्षण का कथन है जो निम्नप्रकार है—

गाथा ३२३—श्री प. जयचन्द जी ने गाथा ३२३ स्वामिकार्तिकेय अनुप्रेक्षा का निम्न प्रकार भाषा अनुवाद किया है। "या प्रकार निश्चय तैं सर्व द्रव्य जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल इनिकू बहुरि इन द्रव्यनि की सब पर्यायनिकू सर्वज्ञ के आगम के अनुसार जाण है श्रध्दान कर है सो शुद्ध सम्यग्दृष्टि है, बहुरि ऐसे श्रध्दान न करे शंका सन्देह करै है सो सर्वज्ञ के आगम तें प्रतिकूल है प्रगट पणे मिथ्यादृष्टि है।"

इस गाथा में स्पष्ट हो जाता है कि जो सर्वज्ञ के आगम के प्रतिकूल एकान्त नियतिवाद (क्रमबध्द पर्याय) सिध्दान्त का श्रध्दान करे वह प्रगटपणे मिथ्यादृष्टि है। जो अनियतिवाद (क्रम अबध्द पर्याय) म शंका या सदेह कर है वह भी मिथ्यादृष्टि है, क्योंकि सर्वज्ञ आगम मे नियति अनियति, काल अकाल, स्वभाव अस्वभाव का कथन पाया जाता है।

गाथा ३२३ का सम्बन्ध गाथा ३२४ मे है क्योंकि गाथा ३२४ म कहा है "कि जो जीव अपने ज्ञानावरण के विशिष्ट क्षयोपशम बिना तथा विशिष्ट गुरू के संयोग बिना, तत्त्वार्थनिकू नहीं जान सके है सो जीव, जिन वचन विषै ऐसे श्रध्दान करै है जो, जिनेश्वर देवने जो तत्त्व कहा है, सो सर्व ही मैं भले

प्रकार इष्ट करूं हूँ ऐसे भी श्रद्धानवान होय है। जो जिनेश्वर वचन की श्रद्धा करै है, जो सर्वज्ञ देव ने कहा है सो सर्व मेरे इष्ट है, ऐसैं सामान्य श्रद्धातैं भी आज्ञा सम्यक्त्व कहा है।"

समयसार आत्मख्याति और क्रमबद्ध पर्याय

प्रश्न नं ८—समयसार सर्वविशुद्ध अधिकार गाथा १ से ४ तक की आत्मख्याति टीका में श्री अमृतचन्द्र आचार्य ने 'जीवो हि तावत्क्रमनियमितात्मपरिणामैरुत्पद्यमानो जीव एव नाजीव' शब्दों द्वारा क्रमनियमित अर्थात् क्रमबद्ध पर्याय का उपदेश दिया है फिर उसका निषेध क्यों किया जाता है?

उत्तर—श्री १०८ अमृतचन्द्र के 'जीवो हितावत्क्रमनियमितात्मपरिणामैरुत्पद्यमानो जीव एव नाजीव'। इस वाक्य का अर्थ श्री पंडितवर जयचन्दजी छावडा ने इस प्रकार किया है—"जीव है सो तौ प्रथम ही क्रमकरि अर नियमित निश्चित अपने परिणाम तिनिकरि उपजता संता जीव ही है, अजीव नहीं है।" इसका यह अभिप्राय है कि प्रत्येक जीव द्रव्य के परिणाम (पर्यायें) क्रम क्रम से होय हैं युगपत नहीं होय हैं। ये पर्यायें नियमित हैं निश्चित हैं अर्थात् जीव द्रव्य की पर्यायें जीव (चेतन) रूप ही होंगी अजीव (अचेतन) रूप नहीं होंगी यह निश्चित है। अपने परिणाम (पर्याय) करि उपजे हैं अर्थात् प्रत्येक जीव द्रव्य की अपनी अपनी पर्यायें भिन्न भिन्न हैं, इसलिये प्रत्येक जीव द्रव्य का अपनी अपनी पर्याय की अपेक्षा उत्पाद होता है दूसरे जीव द्रव्य की पर्याय की अपेक्षा उत्पाद नहीं होता है, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्याय से तन्मय होता है। इसी टीका में कहा भी है—"सर्वद्रव्याणां स्वपरिणामैः सह तादात्म्यात् कंकणादिपरिणामैः काञ्चनवत्।" अर्थात् सर्व ही द्रव्यनिकै

अपने परिणामनिकरि सहित तादात्म्य है, कोई भी अपने परिणामनितैं अन्य नाहीं, ऐसे अपने परिणाम तिनिकूं छोडि अन्य न जाय नाहीं, जैसे कटकादि परिणामनिकरि सुवर्ण उपजे हैं, सो कंकणादिक तैं अन्य नाही है तिनितैं तादात्म्यस्वरूप है, तैसे सर्व द्रव्य हैं।

यदि यहां कोई ऐसी आशंका करे कि 'अपने परिणाम' इतने शब्द ही उपर्युक्त अर्थ के लिये पर्याप्त थे, क्रमबद्ध-पर्याय को बत लाने के लिये 'नियमित' शब्द दिया गया है। ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि 'अपने परिणाम' कहने से इतना जाना जाता है कि प्रत्यक द्रव्य की पर्यायें भिन्न भिन्न हैं किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि जीव की पर्याय चेतन रूप होंगी अचेतन रूप नहीं और अजीव द्रव्य की पर्यायें अचेतन रूप होंगी चेतन रूप नहीं होंगी। 'नियमित' अर्थात् 'निश्चित' शब्द से यह स्पष्ट कर दिया गया कि जीव द्रव्य की पर्यायें चेतन रूप होंगी अचेतन रूप नहीं और अजीव द्रव्य की पर्यायें अचेतन रूप होंगी चेतन रूप नहीं होगी। यदि 'नियमित' शब्द न दिया जाता तो चारवाकमत का निवारण न होता। चारवाकमत यह मानता है कि अचेतन पांच भूतों (द्रव्यों) के मिलने से चेतन पर्याय उत्पन्न होजाती है, इसका निराकरण करने के लिये श्री १०८ अमृतचन्द्र आचार्य ने नियमित शब्द का प्रयोग किया है। यहां पर 'नियति' या अनियति का प्रकरण ही नहीं था किन्तु यहां पर समयसार सर्वविशुद्धि अधिकार में गाथा १४ में तो यह प्रकरण है कि जीव पलट कर अजीव नहीं होजाता और अजीव पलट कर जीव नहीं होता किन्तु 'जीव' जीव ही रहता है और 'अजीव' अजीव ही रहता है।

'नियमित' शब्द 'क्रम' का विशेषण नहीं है इसलिये भी 'क्रम नियमित आत्मपरिणामैः' का अर्थ "क्रमबद्ध पर्याय" नहीं हो सकता है।

सब जीवों के मोक्ष जाने का काल नियत नहीं है।

प्रश्न नं० ८ सब जीवों के मोक्ष जाने का काल तो नियत है?

उत्तर सब जीवों के मोक्ष जाने का काल नियत नहीं है। श्री तत्त्वार्थ राजवार्तिक प्रथम अध्याय सूत्र ३ की टीका में निम्न प्रकार कथन श्री १०८ अकलंक देव ने किया है—

शिष्य कहता है कि यदि अवधृत मोक्ष काल से पूर्व अधिगम सम्यक्त्व के बल से मोक्ष हो जाय तो अधिगम सम्यग्दर्शन सफल है किन्तु ऐसा होता नहीं क्योंकि अपने नियत काल पर ही मोक्ष होता है अतः बिना उपदेश के (निसर्गज सम्यक्त्व) से ही सिद्ध होते हैं उपदेश निरर्थक है। इसके उत्तर में श्री १०८ अकलंक देव सर्वज्ञ वाणी अनुसार कहते है—

"कालानियमाच्च निर्जरायाः।" अर्थात् कर्मनिर्जरा के लिये कोई काल का नियम नहीं है क्योंकि भव्य जीवों के समस्त कर्म निर्जरा पूर्वक मोक्ष जाने के काल का नियम नहीं है। कितने भव्य संख्यात काल में कितने असंख्यात काल में और कितने अनंत काल में मोक्ष जाते है। और कुछ अनन्तानन्त काल में भी मोक्ष नहीं जाते। इसलिये यह कहना ठीक नहीं है कि भव्य जीव के मोक्ष प्राप्ति का काल नियत है अर्थात् भव्य जीव अपने नियत काल पर ही मोक्ष प्राप्त करता है। यदि सर्व जीवों के मोक्ष जाने का काल नियत मान लिया

जाय तो बाह्य और अभ्यान्तर कारणों (जो कि प्रत्यक्ष व परोक्ष ज्ञान के विषय हैं) से विरोध आता है। श्री १०८ अकलंक देव की संस्कृत टीका इस प्रकार है—

"यतो न भव्यानां कृत्स्नकर्मनिर्जरापूर्वकमोक्षकालस्य नियमोऽस्ति कश्चिद् भव्याः संख्येयेन कालेन सेत्स्यन्ति, केचिदसंख्येयेन केचिदनन्तेन, अपरे अनन्तानन्तेनापि न सेत्स्यन्तीति । ततश्च न युक्तम् 'भव्यस्य कालेन निःश्रेयसोपपत्ते' इति । यदि हि सर्वस्य कालो हेतुरिष्टः स्यात्, बाह्याभ्यन्तरकारणनियमस्य दृष्टस्येष्टस्य वा विरोधः स्यात् ।"

इन आर्ष वाक्यों से स्पष्ट है कि सब जीवों के मोक्ष जाने का काल नियत नहीं है। यदि ऐसा न माना जाय तो मोक्ष मार्ग का उपदेश निरर्थक हो जायगा।

संसार की अनित्यता

प्रश्न नं ९—सब संसारी जीवों का संसार काल नियत है, वे उस संसारकाल को काट कर हीन नहीं कर सकते, इसलिये उन सब के मोक्ष पर्याय उत्पन्न होने का काल भी नियत है।

उत्तर—सब संसारी जीवों का संसार काल का प्रमाण नियत नहीं है। श्री १०८ वीरसेन स्वामी ने कहा है—

"एक्को अणादिय मिच्छादिट्ठी तिण्णि करणाणि करिय सम्मत्तं पडिवण्णो तेण सम्मत्तेण उप्पज्जमाणेण अणंतो संसारो छिण्णो संतो अद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तो कदो ।"

[धवल पु ४ पृ ३३५]

अर्थ—एक अनादि मिथ्यादृष्टि कोई जीव तीनों करणों [अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण] को करके सम्यक्त्व

को प्राप्त हुआ। उत्पन्न होने के साथ ही उस सम्यक्त्व से अन्त संसार को छिन्न करके अर्द्धपुद्गल परिवर्तन मात्र काल कर दिया गया।

"एक्केण अणादिय मिच्छादिट्ठिणा तिण्णि करणाणि काऊ उवसमसम्मत्तं पडिवण्ण पढमसमए अणंतो संसारो छिण्ण अद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तो कदो।"

[धवल पु ४, पृ ११, १२, १४, १५, १६, १९,]

अर्थ—एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव ने अध प्रवृत्त तीन करण करके उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होने के प्रथम समय में अनन्त संसार को छिन्न कर अर्धपुद्गल परिवर्तन मात्र किया।

जिस भव्य जीव की संसार रूप पर्यायों का काल अनन्तानन्त रूप था, उसने सम्यग्दर्शन के द्वारा अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल से उपरितन पर्यायों को छेद कर दिया और मोक्ष पर्याय जो अनन्तानन्त काल पश्चात् होनी थी उसको निकट करदी।

यदि मोक्ष पर्याय का काल नियत होता तो संसार काल का छेद नहीं हो सकता था। क्योंकि मोक्ष पर्याय से पूर्व सब संसार पर्याय का काल है। संसार पर्यायों के काल के छेद होता है अतः सब जीवों के मोक्षपर्याय का काल नियत नहीं है।

श्री १०८ कुन्द कुन्द आचार्य ने भी कहा है—

"एक्कं पंडिदमरणं छिंददि जादीसयाणि बहुगाणि"

[मूलाचार ७/७१]

अर्थात्—एक पंडित मरण सैकड़ों जन्मों (संसार भवों) को छेदे है।

संसार पूर्वक मोक्ष होता है। जब संसार काल कम हो सकता है अर्थात् संसारकाल नियति (अवस्थित) नहीं है तो मोक्ष जाने का काल कैसे नियत हो सकता है।

जो, श्री १०८ अकलंक देव के वचनों पर श्रद्धा न कर, प्रत्येक जीव के मोक्ष प्राप्ति का काल नियत है आगे पीछे नहीं हो सकता, ऐसा मानते हैं उनके मत में संसार काल भी नहीं छिद सकता है। क्योंकि मोक्ष प्राप्ति के नियत काल के पश्चात् ऐसा संसार पर्यायें हैं नहीं, जो पर्याय है ही नहीं उसका छेद तो कहा नहीं जा सकता। मोक्ष प्राप्ति के नियत काल से पूर्व की संसार पर्यायें भी छिद नहीं सकती, क्यों कि उनके छिदने से मोक्ष प्राप्ति का काल नियत नहीं रहता, किंतु संसार पर्यायों का छेद होता है। अतः मोक्ष प्राप्ति का काल नियत नहीं है, इस प्रकार सर्वज्ञ वाणी अनुसार भव्यों के मोक्ष जाने का काल नियत नहीं है। श्री १०८ कुन्दकुन्द आचार्य, अकलंकदेव और वीरसेन स्वामी ने इस बात को स्पष्ट रूप से कहा है।



३

सर्व पदार्थ सप्रतिपक्ष हैं।

प्रश्न न १० – 'अनियत पर्याय' किस प्रकार सिद्ध होती

उत्तर – "सव्व सप्पडिवक्खं" अर्थात सर्व प्रतिपक्ष सहित इस सिद्धान्त के अनुसार नियत पर्याय का प्रतिपक्ष अनि पर्याय अवश्य है। यदि सद्भाव स्वीकार न किया जाय अनियत पर्याय के अभाव में उस के प्रतिपक्ष रूप नियत पर्य के अभाव का प्रसंग आ जायगा। जिस प्रकार ससार पर्याय अभाव में उस के प्रतिपक्ष भूत मुक्त पर्याय के अभाव का प्र आता है। कहा भी है—

"तदभावे अभव्वजीवाण पि अभावावत्तीदो। ण च तं ससारिणमभावावत्तीदो। ण चेदं पि, तदभावे असंसारीण अभावप्पसंगादो। ससारीणमभावे सते कथ असंसारीणमभा वुच्चदे, त जहा—ससारीणमभावे सते असंसारिणो णत्थि, सप्पडिवक्खस्स उवलंभण्णहाणुववत्तीदो [धवल पु १४ पृ २३३ २३४]

अर्थ – भव्य जीवों का अभाव होने पर अभव्य जीवों भी अभाव प्राप्त होता है। भव्य और अभव्य जीवों का अभ नहीं है, क्योंकि भव्य और अभव्य जीवों का अभाव होने ससारी जीवों का अभाव प्राप्त होता है। ससारी जीवों अभाव है नहीं, क्योंकि ससारी जीवों का अभाव होने

असंसारी जीवों (मुक्त जीवों) के भी अभाव का प्रसंग आता है। यदि ऐसी शंका हो कि संसारी जीवों का अभाव होने पर असंसारी (मुक्त) जीवों का अभाव कैसे सम्भव है ? तो आचार्य इस का उत्तर देते हुए कहते हैं कि संसारी जीवों का अभाव होने पर असंसारी (मुक्त, सिद्ध) जीव भी नहीं हो सकते, क्योंकि सब सप्रतिपक्ष पदार्थों की उपलब्धि अन्यथा नहीं बन सकती।

"जदि सुहुमणामकम्मं ण होज्ज, तो सुहुमजीवाणमभावो होज्ज। ण च एवं, सप्पडिवक्खाभावे बादराण पि अभावप्पसंगादो।" [धवल पु ६ पृ ६२]

अर्थ – यदि सूक्ष्म नाम कर्म न हो तो उस के उदय से होने वाले सूक्ष्म पर्याय वाले जीवों का भी अभाव हो जायगा। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि अपने प्रतिपक्ष के अभाव से बादरकायिक पर्यायवाले जीवों के भी अभाव का प्रसंग आता है।

इसी प्रकार नियत पर्याय के प्रतिपक्ष भूत अनियत पर्याय के अभाव में नियत पर्याय के अभाव का प्रसंग आता है। किन्तु नियत पर्याय हैं अतः उन के प्रतिपक्ष रूप अनियत पर्याय भी अवश्य होनी चाहिये। जिस प्रकार संसार में ऐसी राशियाँ देखी जाती हैं जो व्यय के होने पर समाप्त (क्षय) हो जाती हैं तो उनकी प्रतिपक्ष ऐसी राशियां भी होनी चाहिये जो आय रहित व्यय के होते रहने पर भी क्षय (समाप्त) न हों।

"अहवा वए संते वि अक्खयो जो वि रासी अत्थि, सव्वासिं सप्पडिवक्खाणुवलंभादो।"

[धवल पु ४ पृ ३३९]

अर्थ व्यय के होते रहने पर भी सदा अक्षय रहने वाली कोई राशि है जो कि क्षय होनेवाली सभी राशियों के प्रतिपक्ष के समान पाई जाती है।

इससे सिद्ध है कि नियत पर्याय की प्रतिपक्ष अनियत पर्याय अवश्य है।

प्रश्न नं० ११—अकाल मरण नहीं है, क्योंकि सब जीवों का मरणकाल नियत है। जब सब जीवों का मरण काल नियत है तो न तो कोई किसी को मार सकता है और न रक्षा कर सकता है।

उत्तर—देव, नारकी, भोगभूमिया तथा चरमोत्तम शरीर वालों का अकाल मरण नहीं है, उनका मरण काल व्यवस्थित है, क्योंकि वे अनपवर्त्य आयु वाले हैं। कहा भी है—

"औपपादिक चरमोत्तमदेहासंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥"

अर्थात्—उपपाद जन्मवाले, चरमोत्तम देह वाले और असंख्यात वर्ष की आयु वाले जीव अनपवर्त्य आयु वाले होते हैं।

इस सूत्र की सामर्थ्य से यह सिद्ध होता है कि औपपादिक आदि [redacted] अन्य संसारी जीवों अर्थात् कर्मभूमिया मनुष्य तिर्यंचों का विष शस्त्र प्रहारादि के द्वारा अकाल मरण अर्थात् अनियत-समय पर मरण हो सकता है। श्री १०८ कुन्दकुन्द आचार्य ने अकाल मरण के निम्न कारण कहे हैं—

विसवेयणरत्तक्खयभयसत्थग्गहणसंकिलेसाणं ।
आहारुस्सासाणं णिरोहणा खिज्जए आऊ ॥ २५ ॥
हिमजलणसलिलगुरुयरपव्वयतरुरुहणपडणभंगेहिं ।
रसविज्जजोयधारण अणयपसंगेहिं विविहेहिं ॥ २६ ॥

[भाव पाहुड]

मरण देखा जाता है। जिसका मरण काल आ गया उसका तो उस समय मरण होगा ही अत वह शस्त्र प्रहार आदि की अपेक्षा नहीं रखता अर्थात् शस्त्र प्रहार आदि होगा तब भी मरण होगा और शस्त्र प्रहार आदि नहीं होगा तब भी मरण होगा क्योंकि उसका मरण काल व्यवस्थित (नियत) है। जिनके मरणकाल का शस्त्र प्रहार आदि से अन्वय व्यतिरेक है अर्थात् शस्त्र प्रहार आदि होगा तो मृत्यु काल उत्पन्न हो जायगा, यदि शस्त्र प्रहार आदि नहीं होगा तो मरण काल उत्पन्न नहीं होगा, उन का मृत्यु काल अव्यवस्थित (अनियत) है अन्यथा शस्त्र प्रहार आदि की निरपेक्षता का प्रसंग आ जायगा किन्तु अकाल मृत्यु के अभाव में आयुर्वेद की प्रमाणभूत चिकित्सा तथा शल्य चिकित्सा (आपरेशन) की सामर्थ्य का प्रयोग किस पर किया जायगा ? क्योंकि चिकित्सा आदि का प्रयोग अकाल मृत्यु के प्रतीकार के लिये किया जाता है।

"कथंचिदायुरुदयान्तरंगे हेतौ बहिरंगे पथ्याहारादौ विच्छिन्ने जीवनस्याभावे प्रसक्ते तत्संपादनाय जीवनाधानमेवापमृत्योरस्तु प्रतीकारः।"

अर्थात् – आयु का उदय अंतरंग कारण होने पर भी किन्तु पथ्य आहार आदि के विच्छेद रूप बहिरंग कारण मिल जाने से जीवन के अभाव का प्रसंग आ जाता है। ऐसा प्रसंग आने पर जीवन के आधार भूत आहारादिक अकाल मृत्यु के प्रतीकार हैं।

यदि अकाल मरण का मृत्यु काल भी व्यवस्थित (नियत) होता तो अकाल मृत्यु का प्रतीकार नहीं हो सकता था, जैसे काल मरण का मृत्युकाल व्यवस्थित है उसका प्रतीकार नहीं हो सकता। किन्तु अकाल मृत्यु का प्रतीकार हो सकता है अत

अकालमृत्यु का मृत्युकाल अव्यवस्थित (अनियत) है, यह मृत्यु काल बहिरंग विशेष कारणों से उत्पन्न होता है। श्री १०८ विद्यानन्द आचार्य ने भी काल मरण का मृत्युकाल व्यवस्थित कहा है और अकाल मरण का मृत्युकाल उत्पन्न होता है ऐसा कहा है।

काल मरण का मृत्युकाल व्यवस्थित (नियत) है इसलिये उस से रक्षा नहीं की जा सकती किन्तु अकाल मरण का मृत्युकाल अव्यवस्थित है अतः उसकी रक्षा संभव है और इसलिये दया धर्म का उपदेश दिया गया है। श्री १०८ कुन्दकुन्द आचार्य ने भावपाहुड गाथा १३१ में मुनियों को छह काय के जीवों की दया करने का उपदेश दिया है, बोध पाहुड गाथा २५ में "धर्म वह ही है जो दया करि विशुद्ध है" ऐसा कहा है और शीलपाहुड गाथा १८ में जीव दया को शील (स्वभाव) का परिवार बतलाया है। यदि अकालमरण का मृत्युकाल अव्यवस्थित न माना जाय तो दयामयी धर्म का उपदेश तथा चिकित्सा शास्त्र व्यर्थ हो जायेंगे। श्री १०८ श्रुत सागर जी सूरि ने तत्वार्थवृत्ति में इसी बात को कहा भी है—"अन्यथा दयाधर्मोपदेशचिकित्साशास्त्रं च व्यर्थं स्यात्।"

जिन का मृत्युकाल व्यवस्थित है अर्थात् नियत है उन को उस नियत काल से पूर्व कोई नहीं मार सकता अर्थात् हिंसा नहीं हो सकती, किन्तु जिन का मृत्युकाल अव्यवस्थित है (अनियत है), शस्त्रप्रहार आदि द्वारा मृत्युकाल उत्पन्न होता है उन की हिंसा शस्त्रप्रहार आदि द्वारा संभव है। इसीलिये द्रव्य प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान द्वारा द्रव्य हिंसारूपी पाप के त्याग का उपदेश दिया गया है और जबतक द्रव्य हिंसा के त्यागरूप द्रव्यप्रतिक्रमण द्रव्यप्रत्याख्यान नहीं होगा उस समय तक

भाव प्रतिक्रमण और भाव प्रत्याख्यान भी नहीं हो स
क्योंकि द्रव्य और भाव म निमित्त नैमित्तिक सबध है। (स
सार आत्मख्याति गाथा २८४-२८५)

दूसरे हिंसा के अभाव म बध का अभाव हो जा
(हिंसाऽभावाद्बन्धस्य बधस्याभाव) और बध के अभाव
मोक्ष का भी अभाव हो जायगा, क्योंकि बधपूर्वक मोक्ष ह
है। मोक्षके अभाव म मोक्षमार्ग और मोक्षमार्ग के उपदेश
भी अभाव हो जायगा।

प्रश्न नं० १०—समयसार गाथा २४७-२६१ में श्री कु
कुन्द भगवान् ने यह कथन किया है कि जो यह मानता है
मैं पर जीवों को मारता हू, जिलाता हूँ, दुखी करता हूँ सुख
करता हु वह मूढ अज्ञानी है और इससे विपरीत अर्था
जो यह मानता है कि मैं पर जीव को नहीं मारत
नहीं जिलाता, दुखी नही करता सुखी नहीं करता, व
ज्ञानी है। इसलिये जिसको जीवदया या हिंसा की श्रद्धा
वह तो मिथ्यादृष्टि है।

उत्तर जो जीव दया म धर्म मानता है और हिंसा को
पाप मानता है वह मिथ्या दृष्टि है ऐसा अभिप्राय समयसार
गाथा २४७-२६१ का नही है, इन गाथाओं म तो जीव हिंसा
दया आदि सबध की जो अध्यवसाय भाव (अहकार भाव) उस
अध्यवसाय को अज्ञान कहा है।

श्री १०८ अमृतचन्द्र आचार्य ने निम्न टीका द्वारा यही
बात कही है।

'परजीवान्' हिनस्मि, परजीवैर्हिस्य चाहमित्यध्यवसाये
ध्रुवमज्ञान, स तु यस्यास्ति सोऽज्ञानित्वात् मिथ्यादृष्टि । यस्य तु
नास्ति स ज्ञानित्वात्सम्यग्दृष्टि ॥"

अर्थ—'मैं पर जीवों को मारता हूं और पर जीव मुझे मारते हैं' ऐसा अध्यवसाय (अहंकार भाव) नियम से अज्ञान है। यह अध्यवसाय जिसके है वह अज्ञानीपने के कारण मिथ्या दृष्टि है और जिसके वह अध्यवसाय भाव नहीं है वह ज्ञानी है।

यहां ऐसा जानना—निश्चय नय तैं अर्थात् सद्भूत व्यवहार नय से तो प्रत्येक द्रव्य जिस भाव रूप (पर्यायरूप) परिणमैं तिस भाव (पर्याय) का करता है पर का करता नहीं है। सो इस नय की अपेक्षा जो पर के द्वारा पर का मरण माने है सो अज्ञानी है। किन्तु व्यवहारनय (असद्भूत व्यवहार नय) [redacted] पर के द्वारा पर का मरण मानना यथार्थ है—सम्यग्ज्ञान है क्योंकि निमित्त नैमित्तिकभाव तैं परद्रव्य पर का कर्त्ता है। जैसे श्री १००८ जिनेन्द्र भगवान् दिव्यध्वनि (पौद्गलिक शब्द) के कर्त्ता हैं, श्री गौतमगणधर द्वादशाङ्गमयी द्रव्यश्रुत के कर्त्ता हैं और श्री १०८ कुन्दकुन्द भगवान श्री समयसार ग्रंथ के कर्त्ता हैं। यदि ऐसा न माना जाय तो दिव्यध्वनि, द्वादशाङ्ग और समयसार ग्रंथ की प्रमाणता के अभाव का प्रसंग आ जायगा। श्री १०८ कुन्दकुन्द आचार्य ने भी इसी बात को कहा है—

"वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुयकेवलीभणियं ॥१॥"

[समयसार]

अर्थात्—श्री १०८ कुन्दकुन्द आचार्य प्रतिज्ञा करते हैं कि मैं उस (समयसार ग्रन्थ) को कहूँगा जिसका कथन केवली (केवल ज्ञानी), श्रुतकेवली (गणधर) और श्रुत (द्रव्यश्रुत द्वादशाङ्ग) द्वारा किया गया है।

समयसार गाथा २७९ २६१ के द्वारा श्री १०८ कुन्दकुन्द आचार्य ने यह नहीं कहा कि सर्वथा पर का मरण या रक्षा नहीं

हो सकती। क्योंकि उन्होंने स्वयं भावपाहुड गाथा २५ व २६ में पर के द्वारा पर की आयु का व्युच्छेद या क्षय कहकर पर के द्वारा पर का मरण स्वीकार किया है (प्रश्न नं ११ में ये गाथा उद्धृत हैं), तथा निम्न गाथाओं में भी इसी बात को कहा है-

छत्तीसपाणाहारो अणंतभवसायरं भमंतेण ।
भोयसुहकारणट्ठं कओ य तिविहेण सयलजीवाणं ॥ १३२

पाणिवहेहि महाजस चउरासीलक्खजोणि मज्झम्मि ।
उप्पज्जंत मरंतो पत्तोसि निरंतरं दुक्खं ॥१३३॥ (भावपाहुड)

अर्थात्— अनंत भवसागर में भ्रमते हुए इस जीव ने भोग सुख के कारण के लिये समस्त त्रस स्थावर जीवों के दशविध प्राणों का भक्षण मनवचन काय के द्वारा किया और प्राणीवध अर्थात् प्राणीघातकरि चौरासी लाख योनियों में जन्म मरण के द्वारा निरंतर दु:ख पाया।

इसी प्रकार श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने जीव रक्षा (दया) का उपदेश दिया है।

छज्जीव छडायदणं णिच्चं मणवयणकायजोएहिं कुरु दय " [भावपाहुड गाथा १३१]
धम्मो दयाविसुद्धो" [बोधपाहुड गाथा २५]
'जीवदया दम सीलरस परिवारो।" [शीलपाहुड गाथा १९]

अथात्—मन वचन काय करि छह काय (पाच स्थावर और एक त्रस काय) की दया कर।

धर्म वही है जो दया करि विशुद्ध है।
जीव दया शील (स्वभाव) का परिवार है।

इस प्रकार श्री १०८ कुन्दकुन्द भगवान ने एक जीव के द्वारा दूसरे जीवों के प्राणघात को स्वीकार करते हुए उनको पाप तथा

संसार परिभ्रमण का कारण कहा है तथा इन्द्रियजन्य सुखों की रक्षा करने का उपदेश दिया है और सम्यक्त्व को धर्म तथा आत्म स्वभाव बतलाया है।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि पदार्थ अनेकान्त भी है, क्योंकि पर का त्याग करना व ग्रहण करना ये दो मार्ग हैं। इन दोनों मार्गों में से जीव अपनी इच्छा अनुसार किसी भी मार्ग को ग्रहण कर सकता है। इन दोनों मार्गों में से यदि वह एक मार्ग को ग्रहण करता है तो वह संसार में रहकर के दुःख उठाता है और यदि वह स्वात्मरूप धर्म मार्ग का अनुसरण करता है तो वह संसार भ्रमण से मुक्त हो अनन्त सुख का भोक्ता है।

४

मोक्षमार्ग और नियतिवाद (क्रमबद्ध पर्याय)

प्रश्न नं, १०–सर्व पर्यायों को सर्वथा नियति (क्रमबद्ध) मानने से मोक्ष मार्ग में बाधा आती है ?

उत्तर–सर्व पर्यायों को सर्वथा नियति (क्रमबद्ध) मानने से मोक्ष मार्ग संभव नहीं है। क्योंकि 'सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः।" अर्थात् सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र अर्थात् रत्नत्रय मोक्षमार्ग है किन्तु सर्व पर्यायों को सर्वथा नियति (क्रमबद्ध) मानने से सम्यक्चारित्र अर्थात् संयम व तप संभव नहीं हैं। संयम का लक्षण निम्न प्रकार है

जन्तुकृपार्दित मनसः समितिषु साधो प्रवर्तमानस्य।

प्राणीन्द्रियपरिहारं संयममाहुर्महामुनयः ॥८६॥ (पद्मनन्दि पंच०)

अर्थात्– जिस का मन जीवानुकम्पा से भीगा है तथा जो ईर्या भाषा एषणा आदाननिक्षेपण उत्सर्ग आदि पांच समितियों में प्रवर्तमान है ऐसे साधु के द्वारा जो षट्काय जीवों की रक्षा और अपनी इन्द्रियों का दमन किया जाता है उस गण धर देवादि महामुनि संयम कहते हैं।

" इच्छा निरोध तप " अर्थात् इच्छाओं का निरोध तप है

यदि सर्व पर्यायें नियत हों तो षट्काय जीवों की रक्षा अपनी इन्द्रियों का दमन और अपनी इच्छाओं का निरोध संभव नहीं हैं। क्योंकि सब जीवों का मृत्यु काल तथा कारण नियत

होने से उनकी रक्षा नहीं हो सकेगी इन्द्रियों की विषयों में प्रवृत्ति रूप पर्याय नियत होने से इन्द्रियों का दमन नहीं हो सकेगा तथा इच्छाओं की उत्पत्ति रूप पर्याय नियत होने से इच्छा निरोध रूप तप नहीं हो सकेगा इस प्रकार नियत पर्याय (क्रमबद्ध पर्याय) के मानने से संयम व तप का अभाव हो जाने से रत्नत्रय रूप मोक्षमार्ग का भी अभाव हो जाता है।

भोगभूमिया मनुष्यों में अनेकों क्षायिक सम्यग्दृष्टि और उत्तम संहनन तथा शुभ लेश्या वाले हैं इसी प्रकार वैमानिक देवों में असंख्याते देव क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं बहुश्रुत ज्ञानी हैं, विशेष शक्ति भी है, तथा शुभलेश्या वाले हैं, किन्तु वे देव संयम या सकल संयम धारण नहीं कर सकते जबकि कर्मभूमिया हीन संहनन वाले क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि अल्प ज्ञानी अनेकों मनुष्य सकल संयम व देशसंयम धारण करते हैं। इस का कारण यह है कि भोगभूमिया मनुष्यों तथा देवों के आहार आदि की पर्याय नियत हैं। और कर्म भूमियों की अनियत है।

जैसे उत्तम भोगभूमिया मनुष्य तीन दिन के अन्तराल से अल्प आहार करता है। उसके आहार का समय तथा मात्रा नियत है। जिस दिन उसके आहार का समय नियत है उस दिन यदि वह अनशन करना चाहे तो नहीं कर सकता क्योंकि उसके आहार का काल नियत है उसको आहार करना ही होगा। अन्तराल के दिनों में यदि वह भोगभूमिया मनुष्य का आहार करना चाहे तो नहीं कर सकता क्योंकि उसके आहार का समय नियत है। इस प्रकार आहार का काल तथा आहार की मात्रा नियत होने से वह अनशन आदि तप नहीं कर सकता। क्योंकि आहार की इच्छा का निरोध नहीं कर सकते। यही कारण है क्षायिक सम्यग्दर्शन आदि गुण सहित देव व

भोगभूमिया मोक्ष नहीं जा सकते। यदि कर्मभूमिया मनुष्यों की भी आहार आदि की पर्याय नियत होती तो वे मोक्ष नहीं जा सकते थे।

कर्म भूमिया मनुष्य अपनी इच्छा अनुसार दिन में चार बार दस बार भोजन कर सकता है और रात को भी भोजन कर सकता है, उसके आहार की व्यवस्था किसी नियति (क्रमबद्ध पर्याय) के आधीन नहीं है। कर्मभूमिया मनुष्य अपनी इच्छा का निरोध करके एक दिन, दस दिन, एक माह आदि तक भी आहार न करे। इसीलिये कर्मभूमिया मनुष्य संयम व तप के द्वारा कर्मों का क्षय कर सिद्ध अवस्था प्राप्त करते हैं, जबकि देव व भोगभूमिया मनुष्य उससे वंचित रहते हैं।

रत्नत्रय में तेरह प्रकार का चारित्र बतलाया गया है, पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति। कहा भी है—

पंचव्रतं समितयः गुप्तित्रय पवित्रितम्।
श्री वीरवदनोद्गीर्णं चरणं चन्द्रनिर्मलम्॥ ५॥
हिंसायामनृते स्तेये मैथुने च परिग्रहे।
विरतिर्व्रतमित्युक्तं सर्वसत्त्वानुकम्पकैः॥ ६॥
[ज्ञानार्णव अष्टम सर्ग]

अर्थ—श्री वीर तीर्थंकर भगवान ने पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति रूप तरह प्रकार का चारित्र कहा है। हिंसा, अनृत (झूठ) चोरी, और परिग्रह इन पापों में विरति अर्थात् त्याग भाव सो व्रत है।

सर्व पर्यायों को नियत मानने में यह चारित्र संभव नहीं है।

जैसे भोगभूमिया मनुष्यों का मरणकाल व कारण नियत है व भोगभूमिया मनुष्य अपनी आयु पूर्ण होने पर छींक व जम्भाई कारण मिलने पर मरण को प्राप्त होते हैं। उस नियत

काल से पूर्व या अन्य कारणों से मरण को प्राप्त नहीं होते। उन भोगभूमिया मनुष्यों का कोई भी घात अर्थात् हिंसा नहीं कर सकता। उन भोगभोमिया मनुष्यों को सर्प सिंह आदि से मृत्यु भय नहीं होता। भोगभूमिया के समान यदि कर्मभूमिया मनुष्य व तिर्यंचों का भी मरण काल व कारण नियत होते तो उनकी भी हिंसा नहीं हो सकती थी और उनका सर्प सिंह शस्त्रप्रहार आदि से मरणभय नहीं होना चाहिए था। इस नियत पर्याय (क्रमबद्ध पर्याय) के द्वारा हिंसा के अभाव का प्रसंग आता है और हिंसा के अभाव में हिंसा त्याग रूप व्रत के अभाव का प्रसंग आता है। जब हिंसा ही नहीं तो त्याग किसका। शेष चार व्रतों जो कि अहिंसाव्रत के बाढ़ स्वरूप हैं के भी अभाव का प्रसंग आता है। इस प्रकार पंच व्रत रूप चारित्र के अभाव में रत्नत्रय रूप मोक्ष मार्ग का भी अभाव हो जायगा।

कर्म भूमिया मनुष्य व तिर्यंचों का सर्प, सिंह, शस्त्र प्रहार आदि द्वारा अनियत काल में मरण हो जाता है अतः हिंसा त्याग रूप व्रत अर्थात् चारित्र का उपदेश दिया गया।

इस प्रकार सर्व पर्यायों को नियत मानने से रत्नत्रय रूप मोक्ष मार्ग का निषेध होता है।

५

सर्वज्ञता और नियतिवाद (क्रमबद्ध पर्याय)

प्रश्न न० १२-जब सर्वज्ञ ने सर्व द्रव्यों की सर्व पर्यायों को जान लिया है और सर्वज्ञ ज्ञान सत्य है इसलिये जिस क्रम से सर्वज्ञ ने भविष्य पर्यायों को जाना है उसी क्रम से उसी समय उन्हीं कारणों से वे पर्यायें होंगी, क्योंकि सर्वज्ञ का ज्ञान अन्यथा हो नहीं सकता। अत सर्वज्ञ की अपेक्षा सब पर्यायें नियत (क्रमबद्ध) हैं। छद्मस्थों (अल्प ज्ञानियों) के द्वारा सर्व पर्यायें जानी नहीं जा सकती अत उनकी अपेक्षा पर्यायें अनियत हैं इस प्रकार एकान्त का दूषण भी दूर हो जाता है। यदि छद्मस्थों के समान सर्वज्ञ ने भी भविष्य पर्यायों को अनियत रूप से जाना तो सर्वज्ञ के सकल प्रत्यक्ष ज्ञान की विशेषता क्या रही? अत जो सर्व पर्यायों को नियत (क्रमबद्ध) नहीं मानते वे सर्वज्ञ को नहीं मानते।

उत्तर— सर्वज्ञ ज्ञान के आधार पर मात्र नियति अनियति का ही विवाद नहीं, किन्तु अनादि सादि अनन्त व सान्त आदि के विषय में भी विवाद है। कुछ विद्वानों का कहना है कि सर्वज्ञ की अपेक्षा तो भूतकाल सादि है और भविष्यकाल सान्त है, क्योंकि सर्वज्ञ ने सर्व भूतकाल के समयों को और भविष्यकाल के समयों को प्रत्यक्ष जान लिया है। यदि सर्वज्ञ ने सर्व भूतकाल को नहीं जाना और सर्व भविष्य काल को नहीं जाना तो सर्वज्ञ ज्ञान की विशेषता के अभाव का प्रसग

जाता है। अल्पज्ञ की अपेक्षा भूतकाल अनादि और भविष्य काल अनन्त है। इसी प्रकार सर्वज्ञ ने समस्त आकाश द्रव्य को जान लिया है अर्थात उसका ओर—छोर जान लिया है अ यथा आकाश द्रव्य के आकार तथा प्रदेशों के प्रमाण का कथन असंभव था इसलिये सर्वज्ञ की अपेक्षा आकाश द्रव्य सान्त है किन्तु अल्पज्ञ की अपेक्षा अनन्त है। सर्वज्ञ ने प्रत्येक द्रव्य की सर्व पर्यायों को जान लिया है इसलिये सर्वज्ञ ज्ञान की अपेक्षा प्रत्येक द्रव्य की सर्व पर्यायें सान्त है किन्तु अल्पज्ञ की अपेक्षा अनन्त हैं। सर्वज्ञ ने समस्त जीव राशि और पुद्गल राशि को जान लिया है इसलिये सर्वज्ञ की अपेक्षा समस्त जीव राशि और पुद्गल राशि सान्त है किन्तु अल्पज्ञ की अपेक्षा अनन्त है। सर्वज्ञ अकृत्रिम जिनबिम्ब सुदर्शन मेरु आदि की व्यञ्जन पर्याय को सादि सान्त रूप से जानते हैं किन्तु अल्पज्ञ इनको अनादि अनन्त रूप से जानता है। सर्वज्ञ यह भी जानते हैं कि सर्व प्रथम किस क्षेत्र में कितनी अवगाहना वाले सिद्ध हुए थे, क्योंकि संसार पूर्वक सिद्ध होने से समस्त सिद्धों की सिद्ध पर्याय सादि है। सर्वज्ञ भूत व भविष्य पर्यायों को भी वर्तमान पर्याय के समान स्पष्ट रूप से जानते हैं। यदि ऐसा न माना जायगा तो सर्वज्ञ के अभाव होने का उन विद्वानों को भय लगा रहता है।

इन अध्यात्माभासवादी विद्वानों ने न तो सर्वज्ञ का स्वरुप ही यथार्थ जाना और न वस्तु स्वरुप ही यथार्थ जाना।

मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय और केवल ये पांचों ज्ञान प्रमाण हैं, क्योंकि ये पांचो ज्ञान यथार्थ रूप से जानते हैं अयथार्थ नहीं जानते। जिस प्रकार नय विकलादेश है अर्थात् किसी एक धर्म की मुख्यता से वस्तु को जानता है उस प्रकार प्रमाण

ज्ञान किसी एक धर्म की मुख्यता से वस्तु को नहीं जानता, क्योंकि प्रमाण सकलादेश है। कहा भी है—

"मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥ ८ ॥ तत्प्रमाणे ॥१०॥" [तत्वार्थसूत्र प्रथम अध्या०]

"सकलवस्तुग्राहकं प्रमाणं। वस्त्वेकदेशग्राहको नयः।"

वस्तु के एक देश की मुख्यता नय से होती है अतः भिन्न-भिन्न नयों की दृष्टि से अपेक्षा कृत कथन संभव है। जैसे, द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से वस्तु अनित्य है। प्रमाण सकल वस्तु को ग्रहण करने वाला है इसलिए वह वस्तु का नित्य अनित्य रूप से ग्रहण करता है अतः एक प्रमाण की अपेक्षा वस्तु नित्य हो और अन्य प्रमाण की अपेक्षा वस्तु अनित्य हो ऐसा नहीं है। प्रमाण ज्ञानों में परस्पर सापेक्ष कथन संभव नहीं है, क्योंकि प्रत्येक प्रमाण ज्ञान सकल वस्तु ग्राहक है। सम्यग्दृष्टि अल्पज्ञ का ज्ञान भी सम्यग्ज्ञान है और सर्वज्ञ का ज्ञान भी सम्यग्ज्ञान है। इसलिए अल्पज्ञ की अपेक्षा अनादि व अनंत मानना और उसी को सर्वज्ञ की अपेक्षा सादि व सान्त मानना ठीक नहीं है। जो अनादि है उसको अल्पज्ञ भी और सर्वज्ञ भी दोनों अनादि रूप से जानते हैं, और जो सादि है उसको अल्पज्ञ भी और सर्वज्ञ भी दोनों सादि रूप से जानते हैं। एक ही वस्तु को सर्वज्ञ सादि रूप से जाने और अल्पज्ञ अनादि रूप से जाने ऐसा संभव नहीं है। क्योंकि दोनों ही का ज्ञान सम्यग्ज्ञान है और सम्यग्ज्ञान वही है जो यथार्थ जाने।

कहा भी है—

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्।
निःसन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥४२॥ [रत्नकरण्ड श्रावकाचार]

अर्थात्—जो वस्तु को न्यूनता अधिकता विपरीतता रहित जैसा का तैसा जानता है वह सम्यग्ज्ञान है।

मृतकाल को श्रुतज्ञानी यदि अनादि रूप से जानता है तो सर्वज्ञ भी उस को अनादि रूप से जानता है। अकाल मरण आदि पर्याय को श्रुतज्ञानी अनियत पर्याय रूप से जानता है अर्थात् अकाल मरण का कोई नियत समय नहीं है जब कभी भी शस्त्रप्रहार आदि बाह्य विशेष कारणों के मिलने पर अकाल मृत्यु काल उत्पन्न हो सकता है, इसी प्रकार सर्वज्ञ भी जानता है। मात्र परोक्ष और प्रत्यक्ष का अन्तर है।

सुदकेवलं च णाणं दोण्णि वि सरिसाणि होंति बोहादो।
सुदणाणं तु परोक्खं पच्चक्खं केवलं णाणं ॥३६९॥ [गो० जी०]

अर्थ—श्रुत ज्ञान और केवल ज्ञान दोनों ही ज्ञान में सदृश है। किन्तु दोनों में अन्तर यह है कि श्रुतज्ञान परोक्ष है और केवल ज्ञान प्रत्यक्ष है।

जो पर्यायें नियत हैं उन को परोक्ष सम्यग्ज्ञानी भी नियत रूप से जानता है और प्रत्यक्ष सम्यग्ज्ञानी भी नियत रूप से जानता है। जो पर्यायें अनियत अर्थात् जिनका कोई नियत समय काल नहीं है उनको परोक्ष सम्यग्ज्ञानी भी अनियत पर्याय रूप से जानता है और प्रत्यक्ष सम्यग्ज्ञानी भी अनियत-पर्याय रूप से जानता है।

यदि श्री सर्वज्ञ देव सर्व पर्यायों को नियति (क्रमबद्ध पर्याय) रूप से जानते हैं तो वे नियतिवाद (क्रमबद्ध पर्याय) को एकान्त मिथ्यात्व कभी नहीं कहते। एक सत्य पुरुष भी जब जैसा जानता जानता है वैसा कहता है किन्तु श्री सर्वज्ञ देव सर्व पर्यायों को नियति रूप से देख जानें और उपदेश यह देवें कि सर्व पर्यायों को नियति मानने वाला मिथ्या दृष्टि है ऐसा सम्भव नहीं है। क्योंकि सर्वज्ञ अन्यथा वादी नहीं होते

"नान्यथा वादिनो जिना ।" [आलाप पद्धति]

श्री सर्वज्ञ देव की दिव्य ध्वनि अनुसार श्री गौतमगणधर ने द्वादशाङ्ग की रचना की है उसके दृष्टिवाद बारहवें अङ्ग में पर समय अर्थात् मिथ्यामतों का कथन है। उन मिथ्यामतों में एक मिथ्यामत नियतिवाद भी है। जो ऐसा मानता है 'कि जिसका जिस समय जिस स्थान पर जिन कारणों से जो होना है वह उसी काल में उसी स्थान पर उन्हीं कारणों के द्वारा अवश्य होगा उसको कोई भी टालने में समर्थ नहीं' यह मिथ्यादृष्टि है। द्वादशाङ्ग के इस कथन से सिद्ध होता है कि श्री सर्वज्ञ देव ने सर्व पर्यायों को नियति (क्रमबद्धपर्याय) रूप से नहीं देखा है। जैसा कहा है वैसा देखा है। श्री सर्वज्ञ ने कहा है यह श्री १०८ कुन्दकुन्द भूतबली आदि आचार्यों द्वारा रचित ग्रंथों द्वारा हमको उपलब्ध है। किन्तु श्री १०८ सर्वज्ञ देव क्या क्या देख रहे हैं और किस प्रकार देख रहे व जान रहे हैं वह हमको उपलब्ध नहीं है। यदि यह उपलब्ध होता तो श्री १०८ कुन्दकुन्द आदि आचार्य यह कहते कि जो जिनेन्द्र भगवान देख व जान रहे हैं वह कहता हूँ किन्तु श्री १०८ कुन्दकुन्द आचार्य ने अनेकों स्थल पर यह कहा है कि श्री जिनेन्द्र भगवान ने जो कहा है वह मैं कहता हूँ अथवा श्री जिनेन्द्र भगवान ने ऐसा देखा या जाना है।

जो यह कहते या मानते हैं कि सर्वज्ञदेव ने सर्वपर्यायों को नियतिरूप से देखा व जाना है वे श्री सर्वज्ञ देव को अन्यथा वादी कहना चाहते हैं अतः यही सिद्ध होता है कि श्री सर्वज्ञदेव ने सर्व पर्यायों को नियति रूप से नहीं देखा व जाना है क्योंकि उन्होंने सर्व पर्यायों को नियति (क्रमबद्ध पर्याय) मानने वाले को मिथ्यादृष्टि कहा है।

प्रश्न न १२— सर्वज्ञ ज्ञान के अनुसार पर्याय होती हैं और होगी इसलिए पर्यायें नियत हैं ?

उत्तर— पर्याय अपने कारणों के अनुसार होती हैं। पर्याय के होने में सर्वज्ञ ज्ञान न तो अतरग कारण है और न बहिरंग कारण है। क्योंकि सर्वज्ञ ज्ञान का पर पर्यायों के साथ अन्वय व्यतिरेक का अभाव है। जैसे सम्यग्दर्शन रूप पर्याय में सात प्रकृतियों का उपशम, क्षयोपशम न या क्षय तो अन्तरग कारण है और तत्वोपदेश आदि बहिरंग कारण हैं। कहा भी है—

सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा ।
अतरहेयोभणिदा दंसणमोहस्स खयपहुदी ॥५३॥ [नियमसार]

इस गाथा में भी श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने सम्यग्दर्शन का अन्तरग कारण दर्शन मोहनीय कर्म के क्षय, क्षयोपशम और उपशम को बतलाया है और बहिरंग कारण जैन शास्त्र तथा उनके जानने वाले पुरुषों को कहा है।

दर्शन मोहनीय कर्म व अनन्तानुबन्धी प्रकृतियों के उपशम क्षयोपशम और क्षय का सम्यग्दर्शन पर्याय के साथ अन्वय व्यतिरेक है, क्योंकि दर्शनमोहनीय कर्म की तीन प्रकृतियों और अनन्तानुबंधी चार प्रकृतियों के उपशम आदि के सद्भाव में सम्यग्दर्शन होता है और अभाव में सम्यग्दर्शन नहीं होता। जो कारण होता है उस का कार्य के साथ अन्वय व्यतिरेक होता है। कहा भी है—

"तन्वादयो न बुद्धिमन्निमित्तकास्तद्न्वयव्यतिरेकानुपलम्भात्। यत्र यदन्वयव्यतिरेकानुपलम्भस्तत्र न तन्निमित्तकत्वं दृष्टम्। यथा पटघटोत्पत्तिकारणोपादानेषु कुविन्दाद्यन्वयव्यतिरेकाननुविधायिषु न कुविन्दादिनिमित्तकत्वम्। बुद्धिमदन्वयव्यतिरेकानुपलम्भश्च तन्वादिषु। तस्मान्न बुद्धि

कत्वमिति व्यापकानुपलम्भ, तत्कारणकत्वस्य तदन्वयव्यतिरेकोपलम्भेन व्याप्तत्वात् कुलाल कारणकस्य घटादेः कुलालान्वयव्यतिरेकोपलम्भप्रसिद्धेः । सर्वत्र बाधकाभावात् तस्य तद्व्यापकत्वव्यवस्थानात् । [आप्तपरीक्षा]

अर्थ—शरीरादिक सर्वज्ञ ईश्वर निमित्तकारणजन्य नहीं है, क्योंकि उसका (सर्वज्ञ का) शरीर के साथ अन्वयव्यतिरेक का अभाव है। अर्थात् शरीरादिक का सर्वज्ञ निमित्त कारण के साथ अन्वय व्यतिरेक नहीं है और अन्वयव्यतिरेक के द्वारा ही कार्य कारण भाव सुप्रतीत होता है जिसका जिसके साथ अन्वय व्यतिरेक का अभाव है वह उस जन्य नहीं होता। जैसे जुलाहा आदि का अन्वय व्यतिरेक न रखने वाले घड़ा, घड़िया, सकोरा आदि जुलाहा आदि निमित्तकारणजन्य नहीं हैं। सर्वज्ञ निमित्त कारण के अन्वय व्यतिरेक का अभाव शरीर आदि के साथ है इसलिये शरीरादिक सर्वज्ञ निमित्तकारण जन्य नहीं है। इस प्रकार व्यापकानुपलम्भ सिद्ध होता है, अर्थात् इस अनुमान मे शरीर आदि कार्यों के साथ सर्वज्ञ की निमित्तकारणता का अन्वयव्यतिरेक नहीं बनता। और यह निश्चित है कि जो जिस का कारण होता है उसका उसके साथ अन्वय व्यतिरेक अवश्य पाया जाता है। जैसे कुम्हार से उत्पन्न होने वाले घड़ा आदिक मे कुम्हार का अन्वयव्यतिरेक स्पष्ट प्रसिद्ध है। सब जगह बाधकों के अभाव मे अन्वय व्यतिरेक कार्य के व्यापक व्यवस्थित होते हैं।

यद्यस्मिन् सत्येव भवति नासति तत्तस्य कारणमिति न्यायात् ॥ [धवल पु० १२ पृ ७८०] अर्थात्—जो जिस के होने पर ही होता है और जिसके न होने पर नहीं होता है वह उसका कारण होता है, ऐसा न्याय है।

इस आर्ष से सिद्ध है कि केवलज्ञान पर द्रव्यों के परिणमन में कारण नहीं है इसलिये सर्वज्ञ ज्ञान के अनुसार पर्याय उत्पन्न होती हैं या उत्पन्न होंगी यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि पर्यायें (कार्य) अपने अपने कारणों के व्यापार के आश्रित उत्पन्न होती हैं।

"तद्व्यापाराश्रितं हि तद्भावभावित्वम् ॥३।५९॥ अन्वय व्यतिरेकसमधिगम्यो हि सर्वत्र कार्यकारणभाव। तौ च कार्यम् प्रति कारणव्यापारसव्यपेक्षावेवोपपन्नौ कुम्भकारस्येव कलश प्रति [प्रमेयरत्नमाला]

अर्थ—कारण व्यापार के आश्रित ही कार्य का व्यापार हुआ करता है। जो सर्वत्र कार्य कारण भाव अन्वय व्यतिरेक से जाना जाता है। सो ये दोनों कार्य के प्रति कारण के व्यापार की अपेक्षा में ही घटित होते हैं। जैसे कुम्हार का घट के प्रति अन्वय व्यतिरेक पाया जाता है अर्थात्-कुम्हार के होने पर ही कलश (घट) की उत्पत्ति होती है और कुम्हार के अभाव में कलश की उत्पत्ति नहीं होती है।

"कारण-कम्माणुसारी कज्ज-कमो। कारणप्पाबहुगाणुसारी चेव कारियअप्पाबहुगमिदि।" [धवल]

अर्थ—जिस क्रम से कारण मिलते हैं उसी क्रम से कार्य होता है। कारण अल्पबहुत्व के अनुसार ही कार्य में अल्प बहुत्व होता है।

'केवलज्ञान के अनुसार पर्यायें होंगी। ऐसी मान्यता मिथ्या है, क्योंकि इसमें कारण विपर्यास है।

यदि सर्व पर्यायों को सर्वथा नियत माना जाय, तो कारण का कार्य के साथ अन्वय व्यतिरेक सिद्ध नहीं हो सकता। सर्व पर्यायों के नियत मान लेने पर यह नहीं कहा जा सकता कि

कारण नहीं मिलेंगे तो कार्य नहीं होगा। क्योंकि जिस प्रकार कार्य का समय, क्षेत्र व कारण आदि सब नियत हैं, उसी प्रकार उन कारणों की उस समय की पर्याय क्षेत्र आदि सब नियत हैं जिस समय जिस क्षेत्र में जिस पर्याय का उत्पन्न होना नियत है उसी समय उसी क्षेत्र में उस पर्याय के नियत कारणों का होना भी नियत है जैसे जिस समय जिस क्षेत्र में जिस मिट्टी की घट रूप पर्याय नियत है उस समय उस क्षेत्र में नियत कुम्हार आदि कारण रूप से अवश्य होंगे। इस सर्वथा नियति में ऐसा नहीं माना जा सकता कि यदि कुम्हार आदि निमित्त नहीं होंगे तो घट कार्य भी नहीं होंगे। इस प्रकार नियति पर्याय (क्रमबद्ध पर्याय) के सिद्धान्त में कारणों के साथ कार्य का अन्वय व्यतिरेक सिद्ध न होने से कारण-कार्य भाव भी सिद्ध नहीं होता। कहा भी है—

"अन्वयव्यतिरेकसमधिगम्यो हि हेतु फलभाव सर्व एव समवरेण हेतुता प्रतिज्ञा मात्र एव कस्यचित् सा वस्तुचिंतायामनुपयोगनीति।" [मूलाराधना]

अर्थ—जगत में पदार्थ का संपूर्ण कार्य कारण भाव अन्वय व्यतिरेक से जाना जाता है। अन्वय व्यतिरेक के बिना कोई पदार्थ किसी का कारण मानना केवल प्रतिज्ञा मात्र ही है, ऐसी प्रतिज्ञा वस्तु के विचार समय (कार्य की उत्पत्ति) में कुछ उपयोगी नहीं है।

प्रश्न नं १४— सर्वज्ञ भविष्य पर्यायों को शक्ति रूप से जानते हैं या व्यक्ति रूप से?

उत्तर— प्रश्न नं १३ के उत्तर में यह सिद्ध हो चुका कि केवलज्ञान सम्यग्ज्ञान है अतः जैसी पर्याय है उसको उसी

रूप से जानता है। वर्तमान पर्याय द्रव्य में व्यक्त रूप होती है और अन्य पर्याय रूप परिणमन करने की शक्ति होने से वे पर्यायें शक्ति रूप से होती हैं व्यक्त रूप से नहीं। जिस रूप से पर्यायें हैं उसी रूप से सर्वज्ञ जानता है। जो पर्यायें द्रव्य में व्यक्त हैं उनको व्यक्त रूप से जानता है और द्रव्य में जिन पर्याय रूप परिणमन करने की शक्ति है उस परिणमन शक्ति को शक्ति रूप से जानता है। इसीलिए वर्तमान पर्याय ग्रहण पूर्वक ही उन शक्तियों का ग्रहण होता है।

'वर्तमान पर्यायाणामेव किमित्यर्थत्वमिष्यते इति चेत्‌ न, अर्यते परिच्छिद्यते इति न्यायतस्तत्रार्थत्वोपलम्भात्। तदनागतातीतपर्यायेष्वपि समानमिति चेत्, न, तद्ग्रहणस्य वर्तमानार्थग्रहणपूर्वकत्वात्।"

[जय धवला]

अर्थ इस प्रकार है—।

शंका—केवल वर्तमान पर्याय को ही अर्थ क्यों कहा जाता है।

समाधान—नहीं क्योंकि जो जाना जाता है उसे अर्थ कहते हैं। इस व्युत्पत्ति के अनुसार वर्तमान पर्याय में ही अर्थपना पाया जाता है।

शंका—यह व्युत्पत्यर्थ अनागत और अतीत पर्यायों में भी समान है। अर्थात् जिस प्रकार ऊपर की व्युत्पत्ति के अनुसार वर्तमान पर्यायों में अर्थपना पाया जाता है उसी प्रकार अनागत और अतीत पर्यायों में भी अर्थपना सम्भव है।

समाधान—नहीं, क्योंकि अनागत और अतीत पर्यायों का ग्रहण वर्तमान अर्थ के ग्रहण पूर्वक होता है। अर्थात् द्रव्य में अतीत और अनागत रूप परिणमन करने की शक्ति है, अतः वर्तमान अर्थग्रहणपूर्वक द्रव्य की इस शक्ति का ग्रहण होता है।

इस आर्ष वाक्य से इतना स्पष्ट है कि वर्तमान पर्याय को ही अर्थ संज्ञा है, भूत और भविष्य पर्यायों को अर्थ संज्ञा नहीं है, क्योंकि जो जाना जाता है वह अर्थ है।

एक अर्थ में नाना रूप परिणमन करने की शक्तियाँ होती हैं। जैसी द्रव्य क्षेत्र काल भव और भावादि रूप सामग्री प्राप्त हो जायगी उस रूप अर्थ का परिणमन हो जायगा। जैसे तंदुल में चूर्ण रूप होने की शक्ति भी है, भात रूप होने की शक्ति भी है जलकर राख रूप होने की शक्ति भी है, अन्य नाना शक्तियां उस तंदुल रूप अर्थ में हैं। जिस प्रकार की द्रव्य-क्षेत्र-काल भव-भावादि रूप सामग्री प्राप्त होगी उस रूप तंदुल का अर्थ परिणमन हो जायगा उस परिणमन को इन्द्र आदि कोई भी रोकने में समर्थ नहीं है।

कालाइलद्धिजुत्ता णाणासत्तीहिसंजुदा अत्था।
परिणममाणा हि सयं ण सक्कदे को वि वारेदुं ॥ २१९ ॥
[स्वा का अ]

टीका—'कालादिलब्धियुक्ता' कालद्रव्यक्षेत्रभवभावादिसामग्रीप्राप्ताः। 'नानाशक्तिभिः' अनेकसमर्थताभिः नानाप्रकारस्वभावयुक्ताभिः संयुक्ताः। यथा तण्डुलाः ओदनशक्तियुक्ताः इन्धनाग्निस्थालीजलादिसामग्रीं प्राप्य भक्तपरिणामं लभन्ते। तत्र भक्तपर्याये तण्डुलानामुभयकारणे सति कोऽपि निषेद्धुं न शक्नोतीति भावः॥

अर्थ—नाना शक्तियों से संयुक्त अर्थ काल आदि सामग्री के मिलने पर स्वयं परिणमन करता है उस परिणमन को कोई भी नहीं रोक सकता।

इस गाथा का यह अभिप्राय है कि अर्थ में नाना रूप परिणमन करने की शक्तियां हैं किन्तु जैसी द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव

रूप सामग्री प्राप्त होगी, तब [illegible] है [illegible] और [illegible]
परिणमेगा अन्य नहीं परिणमेगा [illegible]
भी है इन्धन, अग्नि, पतीली, [illegible]
वह तन्दुल ही भात रूप परिणमता, [illegible]
रूप नहीं परिणमेगी। अन्तरंग [illegible]
जाने पर तन्दुल के भात रूप [illegible] भी
समर्थ नहीं है।

इस प्रकार नियति (क्रमबद्ध [illegible] किसी भी
प्रमाण से सिद्ध नहीं होता, [illegible] है [illegible]
कुछ पर्यायें नियत है और कुछ [illegible] है। [illegible]
मान्यता सम्यक्त्व है।

अ भा व दि जैन शास्त्रिपरिषद् की पिछली पुस्तकों पर सम्मतियां

"शास्त्रिपरिषद् [illegible] प्रकाशित ट्रैक्ट प्राप्त किये। विविध विषय पर प्रकाशित ये ट्रैक्ट सर्वोपयोगी सरल और प्रभावक हैं। शास्त्रिपरिषद् का यह साहित्यविकास प्रशंसनीय है"

श्री प० श्यामलालजी जैन साहित्याचार्य सागर

'आपके भेजे ट्रैक्ट मिले। सभी ट्रैक्ट अतीव उपयोगी एवं सुन्दर रचना से पूर्ण हैं"

श्री जयदीशचन्द्री मेहता

" 'जैनदर्शन में सल्लेखना' ट्रैक्ट में सोठिया जी ने सिद्ध किया है कि सल्लेखना आत्मघात नहीं वरन शांतिपूर्वक मरण है। 'दसलक्षण धर्म' में वर्णीजी ने सरल मधुर भाषा में जनता को उनके कर्तव्य बतलाने का सफल प्रयास किया है। 'सृष्टि कर्तृ खण्डन' में ब्र चाँदमलजी ने यह बतलाने की सफल चेष्टा की है कि परमात्मा निर्विकार, निरूप पूज्य एवं आदर्श है वि [illegible] विश्व का रचना अथवा उसे नष्ट करने वाला नहीं है"

श्री सुल्तानसिंह जैन M A शामली

"सभी ट्रैक्ट समयोपयोगी होते हुये भी सम्भ्रान्त मुमुक्षुओं को सम्यग्दर्शन में सहायक सिद्ध होंगे।

प भैयालाल सहोदर

"आपके भेजे हुए ट्रेक्ट मिले इनको पढ़कर आत्मानुभूति ज्योतिर्मय हुई। आपका यह कदम प्रभावना अंग का द्योतक है"

श्री पं० बाबूलाल 'फणीश' शास्त्री मन्डिया

"आपके द्वारा प्रेषित ट्रेक्ट समयोपयोगी हैं। मैंने उन्हें अद्योपान्त पढ़कर निर्णय किया कि ये समाज के ज्ञान विकास में सहायक होंगे"

श्री पं० बाबूलाल जैन 'आनन्दपुर कालू'

"श्री शान्तिपरिषद् का यह कार्य निःसंदेह धर्म संस्कृति व समाज में नई चेतना लायगा। जैन, जैनेतर समाज के सामने नई शैली में आपने इन पुस्तकों द्वारा चिरंतन सत्य रखा है"

पं० दर्शनलाल जैन 'सरस' सरदार

"आपकी भेजी हुई सभी पुस्तकें मिली प्रयास बहुत सुन्दर है कृपया इस योजना को जारी रखें"

श्री जिनेन्द्र कुमार जैन राँची

"पुस्तकें पढ़कर यह गौरव के साथ उल्लेख किया जा सकता है। कि शान्तिपरिषद् जैन समाज की धार्मिक सद्भावना को सुन्दर बनाने में और जागृति के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है"

श्री पं० भगवतीप्रसादजी बरैया लश्कर

"तीनों ट्रेक्ट मिले, पढ़कर प्रसन्नता हुई। आपका प्रयास श्लाघ्य है। समाज का सौभाग्य है कि परिषद् चहुँमुखी उन्नति करने को अग्रसर है"

पं० मोतीलाल मार्तण्ड ऋषभदेव

"आपके द्वारा भेजे हुए ट्रेक्ट मिले अधिकारी विद्वानों ने ट्रेक्ट के लिखने में जो श्रम किया है वह अत्यन्त प्रशंसनीय है।

शास्त्रिपरिषद् ने इनको प्रकाशित कर समाज का महान उपकार किया है"

प० बारेलालजी जैन टीकमगढ़

"आपके द्वारा भेजी गई पुस्तकें पर्वराज पर सभी ने पढ़ी शास्त्रिपरिषद् द्वारा समाज सेवा की सराहना की"

प० धरणेन्द्रकुमार हटा

'शास्त्रिपरिषद् के सभी ट्रैक्ट बहुत उपयोगी हैं। हमारे दि सम्प्रदाय म उच्चकोटि के चरित्र का संरक्षण करना अति आवश्यक है"

श्री प० पद्मनाथ शर्मा जैन शास्त्री हासन (मैसूर)



शुद्धि-पत्र



पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	[illegible]	[illegible]	[illegible]
६	१७	[illegible]	(ना) नहीं पढ़े
७	फुटनोट	[illegible]	[illegible] पर पढ़े
[illegible]	८	[illegible]	[illegible]
९	२१	[illegible]	[illegible]
१०	१३	[illegible]	[illegible]
१०	१६	[illegible]	[illegible]
११	[illegible]	[illegible]	[illegible]
१२	[illegible]	[illegible]	[illegible]
१२	[illegible]	[illegible]	(पर) नहीं पद के निषेध के लिये है) इस विशेषण को एकान्त कहा है
[illegible]	[illegible]	[illegible]	
१३	४	[illegible]	
१७	१३	[illegible]	
१९	[illegible]	[illegible]	
		[illegible]	

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०	५	यदि सद्भाव	यदि अनियत पर्याय का सद्भाव
२९	२	और त्रस दया	और दया
२९	७	एक	प्रथम
३०	३	में बाधा	मे क्या बाधा
३१	११	का आहार	आहार
३८	२०	जाना है	जाना है यह नहीं
४१	६	तद्रया	तद्रूव्या
४३	२३	क्योंकि	क्यों कि
४८	१८	अयात	अर्थात्

